226
शिव|का

कामधेनु तन्त्र

सम्पादक

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

226
व/का

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग–६

गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला—द्वितीयवर्ष-मरिण ३

कामधेनु तन्त्र

(संशोधित व परिवर्धित संस्करण)

सम्पादक

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

मूल्य

प्रकाशक
कल्याण-मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६

२२६
शिव/का

द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

प्राप्ति-स्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६

अनुक्रमणिका

परिचय ... ... क से भ

१ भगवती पार्वती द्वारा वर्ण-ज्ञान, मन्त्र-तत्व-विषयक प्रश्न और शङ्कर-कृत समाधान १

२ मातृका-माहात्म्य का वर्णन, अकार का त्रि-शक्ति-विन्दु-मयत्व और आदि-प्रकृतिकत्व २

३ आकार से एकार तक के वर्णों का विविध-देवता-मयत्व आदि ३

४ ऐकार से ककार तक के वर्णों का स्वरूप-देवतादि निरूपण ६

५ ककार से णकार तक के वर्णों का देवता-तत्वादि-वर्णन ९

६ तकार से यकार तक के वर्णों के देवताकार-पुरुषार्थ-प्रदत्वादि का कथन १२

७ रकार से क्षकार तक के आठ वर्णों के स्वरूप-देवताकार-तत्वादि का निर्णय १५

८ मन्त्र-ध्यान की विधि का निरूपण १८

९ मन्त्र-चैतन्य का प्रतिपादन १९

१० वर्गाष्टक के माहात्म्य का वर्णन २०
११ प्राण-तत्व का प्रतिपादन २१
१२ सर्व-वेद-विद्याओं और ब्रह्माण्डादि की जननी मातृका के माहात्म्य का वर्णन २२
१३ मातृका-वर्णों का परा-कुण्डलिनी-रूपत्व और उसके ज्ञाता का हो शिव-पुरुषोत्तमादित्व-रूप और सद्-गुरुत्व २३
१४ इडा आदि चार नाड़ियों में प्राणायामादि की विधि से मन्त्र-चैतन्य का आविर्भाव २६
१५ अकारादि वर्णों का ललाटादि-रूप से वर्णन २७
१६ अकारादि से क्षकार तक के पचीस वर्णों का पञ्चविंशति-तत्व-रूपत्व २८
१७ मातृका के नाम और मातृका का युवती-रूपत्व २८
१८ वर्णों के तेजः-पुञ्ज-रूपत्व का प्रतिपादन ३१
१९ मन्त्रों के दश प्रकार के बीज-साधन ३३
२० ध्यान-तत्व के अष्ट-तत्वों के आराधन बिना अन्य क्रियाओं को निष्फलता ३५
२१ वर्ण-द्वय के योग की प्रफुल्लता ३६
२२ सुषुम्णा के मध्यवर्ती वर्णों के ज्ञान बिना योगादि मार्गों में प्रवेश का अभाव ३६
२३ वर्ण-ध्यान और वर्ण-तत्व-ज्ञान से रहित को अशुभ फल ३६
२४ त्रिपुरसुन्दरी के ध्येय स्वरूप का विवरण ३७
२५ बीज-ध्यान का माहात्म्य ३८
२६ मन्त्र-बीज के जप-ध्यानादि का प्रकार ४०
२७ मन्त्रों के त्रि-तत्वादि का प्रतिपादन ४१
२८ गायत्री-मन्त्र के अन्तर्गत वकारादि-तत्व का निरूपण और ककार का दुर्लभ ध्यान ४४
२९ वर्ण-दीपनी का निरूपण ४६
३० रहस्य-विधि का प्रतिपादन और तिलक-धारण की विधि ४६
३१ हृत्-तत्व का वर्णन और उसके ज्ञान को महिमा ४८
३२ त्रिविध ध्यान का निरूपण ४८
३३ शूद्र के अनधिकार का वर्णन ४९
३४ स्व-धर्म में निरत शूद्र की प्रशंसा ५०
३५ पचास वर्णों के संकेत-विज्ञान से रावणादि का त्रैलोक्याधिपतित्व आदि ५१
३६ पचास वर्णों के संकेत-विज्ञान से विहीन साधक को रौरवादि की प्राप्ति ५१
३७ विष्णु आदि मन्त्रों में विशेष विधि ५२

३८ मातृका-माहात्म्य का वर्णन और दीपनी विद्या ५३
३९ भाव की प्रधानता और दिव्य-भावादि की परिगणना ५४
४० ककार के ध्यान से सर्व-सिद्धि ५४
४१ प्रफुल्लादि ध्यान का प्रतिपादन ५६
४२ वर्ण-मोहन का निरूपण ५७
४३ नव तत्व-विद्या का महत्व ५८
४४ प्रति अक्षर के अनुलोम-विलोम ध्यान से सर्व-सिद्धीश्वरत्व ५९
४५ मन्त्रों की निद्रा भङ्ग करने की विधि ५९
४६ कामिनी-ध्यान का माहात्म्य ५९
४७ निद्रा-भंग होने पर दक्षिण-वाम वायु का फल ६१
४८ अष्टाक्षरी महाविद्या दीपनी और मोक्ष-रूपिणी ६१
४९ शूद्रद्वारा लिखित पटल के जप का निषेध ६२
५० कामधेनु-मन्त्र का माहात्म्य ६२
५१ मन्त्र-समर्पण के तत्व का प्रतिपादन ६४
५२ कामिनी गज-गह्वर में मन्त्र-वर्ण के दश बार जप का विधान ६४
५३ मन्त्र-समर्पण के प्रसंग में जीव-तत्व, जप-तत्वादि का निरूपण ६५
५४ चन्द्र-सूर्य के उपराग [ग्रहण] में कामिनी-जप का शीघ्र फल देना ६७
५५ चन्द्र-सूर्य के उपराग [ग्रहण] के दर्शन की अनिवार्यता ६७
५६ चन्द्र-सूर्य के उपरागादि में आचाण्डालादि द्विज-तुल्य होते हैं ६८
५७ चन्द्र-सूर्य-ग्रहण के समय में स्नान, जप, दानादि का विधान ६८
५८ मातृका-ध्यान का प्रकार ६९
६९ पञ्च-योग-साधन से कायिक, वाचिक और मानस पापों का नाश ७१
६० गंगा-दर्शन का माहात्म्य ७१
६१ माला-रहस्य का प्रतिपादन ७२
६२ जीव-मन्त्र-ध्यानादि का प्रतिपादन ७२

परिचय

प्रस्तुत 'कामधेनु तन्त्र' का प्रथम संस्करण वैशाख पूर्णिमा सम्वत् २०२१ में प्रकाशित हुआ था। इस तन्त्र में मन्त्र-साधना की मूल मातृका-विद्या पर प्रकाश डाला गया है। यह विद्या बहुत कुछ रहस्यमयी है और अनुभवी गुरुओं की कृपा से ही समझी जा सकती है।

'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त शुक्ल द्वारा संगृहीत इस तन्त्र की पाण्डुलिपि के अनुसार इसके प्रथम संस्करण में कुल इक्कीस पटल ही प्रकाशित किये थे किन्तु इधर अन्य पाण्डुलिपियों से पता चला कि वास्तव में इस तन्त्र में चौबीस पटल हैं, जिनमें से २२ वां पटल तो लुप्त है और तेईसवें पटल का केवल अन्तिम भाग ही उपलब्ध है। अतः कामधेनु तन्त्र के इस द्वितीय संस्करण में 'ग्रन्थ-पात' शीर्षक के अन्तर्गत २३ वें पटल का उपलब्ध अंश देकर २४ वां पटल

प्रकाशित किया गया है। इन सभी पटलों की भाषा बड़ी सरल है। इन सबका सारांश निम्न प्रकार है—

पहले पटल में पार्वती जी महादेव से पूछती हैं कि पचास वर्णों का तात्विक रूप क्या है। इस पर वे बताते हैं कि मन्त्र-तत्व को जाने बिना जो व्यक्ति महा-विद्या का जप करता है, उसका सब किया-धरा व्यर्थ जाता है। जप-पूजन का उसे कोई फल नहीं मिलता। ध्यान की साधना हो या योग की समाधि हो, वर्णों का ज्ञान यदि नहीं है, तो सफलता नहीं मिलती।

अकार से क्षकार तक के वर्ण मातृका-बीज रूप हैं। यह मातृका देवी नाना विद्या-मयी तथा ब्रह्माण्ड-जननी है। वर्ण से ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मातृका, विसर्ग और विन्दु यही त्रि-शक्ति ब्रह्म-स्वरूप है।

अकार शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान प्रकाश-वाला और पञ्च-कोण-मय है। यह पञ्च-देव-मय और तीन शक्तियों से युक्त है। निर्गुण है, तीनों गुणों से युक्त है और साक्षात् कैवल्य-स्वरूप है। विन्दु-तत्व से युक्त यह वर्ण स्वयं प्रकृति-स्वरूप है।

दूसरे पटल में 'आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए' इन दस वर्णों का स्वरूप बताया गया है। तृतीय पटल में 'ऐ, ओ, औ, अं, अः' इन पाँच वर्णों का स्वरूप बताकर यह निर्देश करते हैं कि ये सोलहों वर्ण किशोरावस्थावाली, गीत-वादन में तत्पर रहनेवाली शिव-युवती साक्षात् स्वयं कुण्डली ही है।

अब ककार का तत्त्व बताते हुये कहते हैं कि ककार से धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष सभी प्राप्त होते हैं। यह समस्त वर्णों की मूल प्रकृति है।

चौथे पटल में 'क' से 'ण' तक, पाँचवें पटल में 'त' से 'य' तक, छठे पटल में 'र' से 'क्ष' तक के वर्णों का स्वरूप-वर्णन कर यह बताते हैं कि स्वयं परम कुण्डली ही अकार से लेकर क्षकार तक व्याप्त है। सारा चराचर विश्व वर्ण से उत्पन्न होता है। नाना शास्त्र, पुराण, इतिहास, वेद, स्मृति-शास्त्र आदि अन्य सभी कुछ अक्षर से ही उत्पन्न होते हैं। वह साक्षात् पर-ब्रह्म है।

सातवें पटल में मातृका के मन्त्र-तत्त्व का वर्णन करते हैं। इष्ट-मन्त्र का जप करने के पूर्व पञ्चाशन्मातृकाओं का दस बार जप करे। तब प्रत्येक मातृका को प्रणव से पुटित कर दस-दस बार जप करे। यथा—पहले 'ॐ अं ॐ' का दस बार जप करे,

फिर 'ॐ आं ॐ' का दस बार जप करे। इसी क्रम से 'ॐ क्षं ॐ' तक की मातृकाओं का दस-दस बार जप करे। जप करते हुये प्रत्येक का ध्यान करे।

अथवा सभी वर्णों को एकत्र कर दस बार जप करे। तब अपने इष्ट-मन्त्र का जप करे।

इष्ट-विद्या का एक बार मन में ध्यान कर, जिस मन्त्र का जो ध्यान हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करे। फिर उस मन्त्र का दस बार जप कर पुनः इष्ट का ध्यान करे। तब इष्ट-मन्त्र का जप करे। इस विधि से मन्त्र 'चैतन्य' हो जाता है।

'अ-क-च-ट-त-प-य-श' यह वर्णाष्टक है। मन्त्र के आदि और अन्त में विन्दु-संयुक्त अकार लगाकर उसका जप १०८ बार भक्तिपूर्वक करे। इस प्रकार एक लक्ष जप पूर्ण कर लेने से मन्त्र 'जीवत्व' को प्राप्त कर लेता है।

आठवें पटल में मातृका की महिमा बताते हुये कहते हैं कि उसके बिना सारा ब्रह्माण्ड शव-वत् है। इन दोनों के सङ्गम से ही प्रफुल्लता होती है। जिन मन्त्रों और विद्याओं में इस प्रफुल्ल भाव को अनुभव करे, उन्हीं का जप करे।

नवें पटल में जीव-न्यास की विधि बताई है,

जिसके करने से मन्त्र-सिद्धि होती है और साधक शिव-तुल्य होता है।

दसवें पटल में पञ्चाशन्मातृका के युवती-स्वरूप का वर्णन करते हुये कहते हैं कि ब्रह्म तो निर्गुण है, युवती-गण ही प्रधान हैं।

ग्यारहवें पटल में कुल्लुका, सेतु आदि के जप का महत्व बताते हैं।

बारहवें पटल में मातृका-ध्यान और बीज-ध्यान बताकर उनका महत्त्व दर्शाते हैं।

तेरहवें पटल में बीज-ध्यान की विधि बताकर यह निर्देश करते हैं कि यदि साधक सभी बीज-वर्णों का ध्यान अलग-अलग करे, तो उसका परम कल्याण होता है। न कर सके, तो मातृका का ध्यान करे।

चौदहवें पटल में वकार-तत्त्व बताकर ककार का ध्यान बताते हैं। फिर तिलक के विषय में निर्देश करते हैं कि राज्यार्थी रक्त-वर्ण का, मोक्षार्थी श्वेत-चन्दन का, वशीकरण में रोचना का, मोहन में अगुरु-कुंकुम आदि का, मारण में कृष्ण-गन्ध का तिलक लगावे। ललाट में, बाहु-मूल में, दोनों स्कन्धों पर, हृदय में, दोनों पार्श्व में, पीठ में, नाभि में, दोनों ऊरु में, दोनों गण्डों में, दोनों पैरों के अधोभाग में यत्न-

पूर्वक विन्दु-युक्त ककार-वर्ण लिखे। इससे विद्या-मन्त्र सहज ही सिद्ध हो जाता है और सारे लोक तथा देवता वशीभूत होते हैं। इष्टदेव के वश में आते ही देवत्व की प्राप्ति हो जाती है।

ललाट में रोचना का तिलक करे। उसके मध्य में मनोहर ककार लिखे। यह तिलक 'जन-मोहन' तिलक है।

पन्द्रहवें पटल में हृत्तत्व बताते हुये कहते हैं कि हृदय के द्वादश-दल कमल में इष्ट-विद्या की भावना करे। पहले वराट के ऊपर ककार का ध्यान करे। फिर एक-एक पत्र में इष्ट-विद्या का जप करे। मन्त्र के प्रथम बीज का पहले ध्यान कर उसका जप करे। इस क्रिया से मन्त्र देवता-स्वरूप हो जाता है। तदनन्तर तन्त्रोक्त विधि से देवता का ध्यान करे। इस प्रकार ध्यानादि कर पूजा करने से साधक सर्व-सिद्धि-मय होता है।

सोलहवें पटल में पञ्चाशद्-वर्ण-सङ्केत बताते हुए कहते हैं कि प्रत्येक मास में शनि और मङ्गलवार के दिन प्रातः स्नान कर सन्ध्या-वन्दन के बाद सूर्य को अर्घ्य दे। फिर पैर धोकर याग-मण्डप में आये और भूत-शुद्धि कर मातृका-न्यास करे। तदनन्तर प्राणायाम

कर तन्त्रोक्त मार्ग से अन्य न्यासों को कर श्वेत वस्त्र पहन, माला धारण कर, शरीर में चन्दन लगाकर रक्त आसन पर या कुशासन पर बैठे। तब ताम्र-पत्र में सिन्दूर या रक्त-चन्दन का लेप कर अलग-अलग मातृका-वर्णों को अकार से क्षकार तक विन्दु-युक्त लिखे। इसके बाद वाम नासा-पथ से पुष्पाञ्जलि पर श्वास छोड़कर विधिवत् देवता को लावे और ध्यान कर अलग-अलग विविध गन्धों, पुष्पों और दीपों से उसकी पूजा करे। फिर विविध नैवेद्य अर्पित कर नाना फल आदि प्रदान करे। विविध सुगन्धित पुष्प-हारों से परमेश्बरी की पूजा कर १०८ बार जप करे। प्रत्येक मातृका-वर्ण का जप करे। इस विधान से मातृका देवी प्रसन्न होती है।

सत्रहवें पटल में बताते हैं कि भाव में ही देवता का निवास होता है, काष्ठ या पाषाण की मूर्ति में नहीं। अतः प्रयत्नपूर्वक वीर-भाव से युक्त होना चाहिये।

अठारहवें पटल में बताते हैं कि कलि-काल में मन्त्र सदा निद्रातुर रहते हैं। अतः उनके 'निद्रा-भङ्ग' के लिए निर्दिष्ट क्रिया करनी चाहिये।

उन्नीसवें पटल में कहते हैं कि पूजा-काल में कभी

सन्देह न करे। हृदय या मन में दस बार जप करने से मन्त्र का प्रायश्चित्त हो जाता है। इस प्रकार प्राय-श्चित्त करके जप करने से अन्य दोषों का प्रभाव नहीं होता।

बीसवें पटल में देवी पूछती हैं कि मन्त्र-समर्पण का क्या रहस्य है? मन्त्र का समर्पण किसे करना चाहिये? मन्त्र का तेज अर्पित करने से तो साधक निस्तेज हो जायगा, फिर जप-पूजा-पुरश्चर्या करने से क्या लाभ? इसका समाधान करते हुये महादेव कहते हैं कि मन्त्र-जप का तेजोरूप फल देवी के बाएँ हाथ में अर्पित करना चाहिये और गन्ध-पुष्पादि बाह्य पूजा देवता के दक्षिण हाथ में अर्पित करना चाहिये। इससे साधक मन्त्र-जप के फल का भागी होता है।

इक्कीसवें पटल में चन्द्र-ग्रहण को कोटि-गुण और सूर्य-ग्रहण को दस-गुण फल-दायक बताते हुये कहते हैं कि ग्रास से मुक्ति-पर्यन्त जप करने से सिद्धि मिलती है। छः मास से अधिक बालक को ग्रहण-काल में अवश्य स्नान करना चाहिये। ग्रहण में सङ्कल्प करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ग्रास से मोक्ष तक की अवधि में मास, पक्ष, तिथि आदि की गणना नहीं होती और न ही ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रादि वर्ण-भेद

माना जाता है। सभी का ब्रह्म-गोत्र होता है। ग्रहण-काल में श्राद्धादिक का त्याग कर मन्त्र-जप करना चाहिये।

बाईसवां पटल लुप्त हो गया है। यदि किन्हीं महानुभाव के पास यह पटल उपलब्ध हो, तो भेजने की कृपा करेंगे।

तेईसवें पटल का केवल अन्त का अंश उपलब्ध है, जो प्रकाशित किया गया है। इसमें बताया है कि पञ्च-योग की साधना से कायिक, वाचिक और मानस पापों का नाश होता है। साथ ही पुण्य-सलिला गङ्गा नदी के दर्शन की महिमा का वर्णन किया गया है।

चौबीसवें अन्तिम पटल में जप-माला के रहस्य का प्रतिपादन करते हुये जीव-मन्त्र के ध्यानादि का महत्व स्पष्ट किया गया है।

आशा है कि उक्त संक्षिप्त परिचय से तथा आगे दी गई विस्तृत अनुक्रमणिका की सहायता से तन्त्र-प्रेमी पाठक इस तन्त्र का महत्त्व पूर्णतया हृदयङ्गम कर सकेंगे।

पौष पूर्णिमा २०३५ —कुल-भूषण

प्रथम पटल

ॐ नमः पर-देवतायै

श्रीपार्वत्युवाच—देव-देव महा-देव ! सर्वागम-विशारद ! अधुना देव-देवेश ! पञ्चाशद्वर्णमुत्तमं। तत्व-रूपं महादेव ! कथयस्व दयानिधे ! कृपया कथयेशान ! यद्यहं तव वल्लभा।

श्रीमहादेव-उवाच—अधुना सम्प्रवक्ष्यामि रहस्य-मति-गोपनं। येन विज्ञात-मात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। अज्ञात्वा मन्त्र-तत्वानि महाविद्यां जपेत्तु यः। सर्वं तस्य वृथा देवि ! किं तस्य जप-पूजनैः। ध्यानावधारणे चैव तथा योग-समाधिना। वर्ण-ज्ञानं यदा नास्ति किं तस्य जप-पूजनैः। मम कण्ठे स्थितं बीजं पञ्चाशद्वर्ण-मद्भुतं। नाना-वर्ण-युतं शुद्धं तन्त्राणां सारमुत्तमम्।

पञ्चाशन्मातृकां देवीं नाना-विद्या-मयीं सदा। नाना-विद्या-मयीं देवीं महा-विद्या-मयीं तथा। सर्व-वर्ण-मयीं देवीं सर्व-देव-मयीं परां। सर्व-देव-मयीं सौम्यां ब्रह्माण्ड-जननीं परां। प्रणम्य बहुधा भक्त्या निग-दामि शृणु प्रिये !

अकारादि-क्षकारान्ता मातृका-वीज-रूपिणी । विसर्गश्चैव विन्दुश्च त्रिशक्ति-ब्रह्म-विग्रहः । वर्णात्तु जायते ब्रह्मा तथा विष्णुः प्रजायते । रुद्रश्च जायते देवि ! जगत्संहार-कारकः । मम कण्ठ-स्थिता या सा शारदा वाम-लोचना । तस्या गर्भ-स्थिता देवि वीजानि विविधानि च । विधृत्य कण्ठ-देशे तु शिवोऽहं कमलानने !

शृणु तत्वमकारस्य अति-गोप्यं वरानने ! शरच्चन्द्र-प्रतीकाशं पञ्च-कोण-मयं सदा । पञ्च-देव-मयं वर्णं शक्ति-त्रय-समन्वितं । निर्गुणं त्रिगुणोपेतं स्वयं कैवल्य-मूर्ति-मान् । विन्दु-तत्व-मयं वर्णं स्वयं प्रकृति-रूपिणी ।। अ १ ।।

।। इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे प्रथमः पटलः ।।

द्वितीय पटल

श्रीमहादेव उवाच—आकारं परमाश्चर्यं शङ्ख-ज्योतिर्मयं प्रिये ! ब्रह्म-विष्णु-मयं वर्णं तथा रुद्रं स्वयं प्रिये ! पञ्च-प्राण-मयं वर्णं स्वयं परम-कुण्डली ।।आ २।।

इकारं परमानन्दं सुगन्ध-कुसुमच्छविं । हरि-ब्रह्म-मयं वर्णं सदा रुद्र-युतं प्रिये ! सदा शक्ति-मयं देवि ! गुरु-ब्रह्म स्वयं तथा । सदाशिव-मयं वर्णं पर-ब्रह्म-समन्वितं । हरि-ब्रह्मात्मकं वर्णं गुण-त्रय-समन्वितं । इकारं परमेशानि ! मूर्तिवैं कुण्डली स्वयम् ।। इ ३ ।।

ईकारं परमेशानि ! मूर्तिवैं कुण्डली स्वयं । ईकारं परमेशानि ! स्वयं परम-कुण्डली । ब्रह्म-विष्णु-मयं वर्णं तथा रुद्र-मयं सदा । पञ्च-देव-मयं वर्णं पीत-विद्युल्लताकृतिं । चतुर्ज्ञान-मयं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा ।। ई ४ ।।

उकारं परमेशानि तारः कुण्डलिनी स्वयं । पीत-चम्पक-सङ्काशं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राण-मयं देवि ! चतुर्वर्ग-प्रदायकं ।। उ ५ ।।

ऊकारं देव-देवेशि ! वीजं परम-दुर्लभं । शङ्ख-कुन्द-समाकारं स्वयं परम-कुण्डली । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं

पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राण-युतं वर्णं तथा त्रय-गुणात्मकं । विन्दु-त्रय-युतं वर्णं पीत-विद्युल्लता तथा । धर्मार्थ-काम-मोक्षं च सदा सुख-प्रदायकं ॥ ऊ ६ ॥

ऋकारं परमेशानि कुण्डली मूर्ति-मान् स्वयं । अत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव वरानने ! सदाशिव-युतं वर्णं सदा ईश्वर-संयुतं । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं चतुर्ज्ञान-मयं सदा । रक्त-विद्युल्लताकारं ऋकारं प्रणमाम्यहं ॥ऋ७॥

ॠकारं परमेशानि ! स्वयं परम-कुण्डली । पीत-विद्युल्लताकारं पञ्च-देव-मयं सदा । चतुर्ज्ञान-मयं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं प्रणमामि सदा प्रिये ॥ ॠ ८ ॥

ऌकारं चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डली पर-देवता । अत्र ब्रह्मादयः सर्वे तिष्ठन्ति सततं प्रिये । पञ्च-देव-मयं वर्णं चतुर्ज्ञान-मयं सदा । पञ्च-प्राण-युतं वर्णं तथा गुण-त्रयात्मकं । विन्दु-त्रयात्मकं वर्णं पीत-विद्युल्लता तथा ॥ ऌ ९ ॥

ॡकारं परमेशानि ! पूर्ण-चन्द्र-सम-प्रभं । पञ्च-देवात्मकं वर्णं पञ्च-प्राणात्मकं सदा । गुण-त्रयात्मकं वर्णं तथा विन्दु-त्रयात्मकं । चतुर्वर्ग-प्रदं देवि ! स्वयं परम-कुण्डली ॥ ॡ १० ॥

एकारं परमं दिव्यं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकं । बन्धूक-कुसुम-प्रख्यं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राणात्मकं वर्णं

तथा विन्दु-त्रयात्मकं । चतुर्वर्ग-प्रदं देवि ! स्वयं परम-कुण्डली ॥ ए ११ ॥

॥ इति कामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे द्वितीयः पटलः ॥

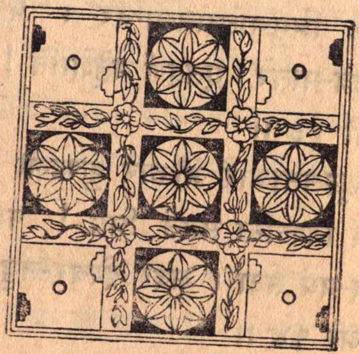

तृतीय पटल

ऐकारं परमं दिव्यं महा-कुण्डलिनी स्वयं । कोटि-चन्द्र-प्रतीकाशं पञ्च-प्राण-मयं सदा । ब्रह्म-विष्णु-मयं वर्णं तथा रुद्र-मयं प्रिये ! सदाशिव-मयं वर्णं विन्दु-त्रय-समन्वितं ॥ ऐ १२ ॥

ओकारं चञ्चलापाङ्गि पञ्च-देव-मयं सदा । रक्त-विद्युल्लताकारं त्रिगुणात्मानमीश्वरं । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं नमामि देव-मातरं । एतद्वर्णं महेशानि ! स्वयं परम-कुण्डली ॥ ओ १३ ॥

रक्त-विद्युल्लताकारं औकारं कुण्डली स्वयं । अत्र ब्रह्मादयः सर्वे तिष्ठन्ति सततं प्रिये ! पञ्च-प्राण-मयं वर्णं सदाशिव-मयं सदा । सदा ईश्वर-संयुक्तं चतुर्वर्ग-प्रदायकं ॥ औ १४ ॥

अंकारं विन्दु-संयुक्तं पीत-विद्युत्सम-प्रभं । पञ्च-प्राणात्मकं वर्णं ब्रह्मादि-देवता-मयं । सर्व-ज्ञान-मयं वर्णं विन्दु-त्रय-समन्वितं । शक्ति-त्रय-मयं वर्णं स्वयं परम-कुण्डली ॥ अं १५ ॥

अःकारं परमेशानि ! विसर्ग-सहितं सदा । अःकारं परमेशानि ! रक्त-विद्युत्प्रभा-मयं । पञ्च-देव-मयो वर्णः पञ्च-प्राण-मयः सदा । सर्व-ज्ञान-मयो वर्णः आत्मादि-तत्व-संयुतः । विन्दु-त्रय-मयो वर्णः शक्ति-त्रय-मयः सदा । किशोर-वयसः सर्वे गीत-वाद्यादि-तत्पराः । शिवस्य युवती एता मूर्तिमत्कुण्डली स्वयं ॥ अः १६ ॥

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि कार-तत्वमनुत्तमं । रहस्यं परमाश्चर्यं त्रैलोक्यानां च संशृणु । वाम-रेखा भवेद् ब्रह्मा विष्णुर्दक्षिण-वीथिका । अधोरेखा भवेद्रुद्रो मात्रा साक्षान्महेश्वरी । कुण्डली अंकुशाकारा मध्ये शून्यः सदाशिवः । जवा-यावक-सङ्काशा वाम-रेखा वरानने ! शरच्चन्द्र-प्रतीकाशा दक्ष-रेखा च मूर्तिमान् । अधोरेखा वरारोहे ! महा-मारकत-द्युतिः । शङ्ख-कुन्द-समा कीर्तिर्मात्रा साक्षात् सरस्वती । कुण्डली अंकुशा या तु कोटि-विद्युल्लताकृतिः । कोटि-चन्द्र-प्रतीकाशा मध्ये शून्यः सदाशिवः । शून्य-गर्भे स्थिता काली कैवल्य-पद-दायिनी ।

ककाराज्जायते सर्वं कामं कैवल्यमेव च । अर्थश्च जायते देवि तथा धर्मश्च नान्यथा । ककारः सर्व-वर्णानां मूल-प्रकृतिरेव च । ककारः कामदा काम-रूपिणी स्फुरदव्यया । कामिनी या महेशानि ! स्वयं प्रकृति-सुन्दरी । माता सा सर्व-देवानां कैवल्य-पद-दायिनी । ऊर्ध्व-कोणे स्थिता कामा ब्रह्म-शक्तिरितीरिता । वाम-कोणे स्थिता ज्येष्ठा विष्णु-शक्तिरितीरिता । दक्ष-कोणे स्थिता विन्दू रौद्री संहार-रूपिणी । ज्ञानार्था सा तु

चार्वङ्गि ! केन चतुष्टयात्मिका ।

इच्छा-शक्तिर्भवेत् ब्रह्मा विष्णुश्च ज्ञान-शक्ति-मान् । क्रिया-शक्तिर्भवेत् रुद्रः सर्वः प्रकृति-मूर्ति-मान् । आत्म-विद्या शिवैस्तत्वैः सदा-सारा-प्रतिष्ठितैः । आसनं त्रिपुरा-देव्याः ककारं पञ्च-देवतां । ईश्वरो यस्तु देवेशि ! त्रिकोणे तस्य संस्थितिः । त्रिकोणमेतत् कथितं योनि-मण्डलमुत्तमं । केवलं प्रपदे यस्याः कामिनी सा प्रकीर्तिता ।

ॐ शयनागार-सिन्दूर-सदृशीं कामिनीं परां ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च बाहु-वल्ली-विराजितां ।
कदम्ब-कोरकाकार - स्तन-द्वय-विभूषितां ।
रत्न-केयूराङ्गदैश्च भूषणैरुप-शोभितां ।
रत्न-हारैः पुष्प-हारैः शोभितां परमेश्वरीं ॥

एवं हि कामिनीं ज्ञात्वा ककारं दशधा जपेत् । प्रफुल्लं च ततो ध्यात्वा जपस्य फल-भाक् भवेत् । एतत्ते कथितं देवि ककार-तत्वमुत्तमं ।

॥इति श्री कामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे तृतीयः पटलः॥

चतुर्थ पटल

श्रीमहादेव उवाच—ककारं परमेशानि कुण्डली-त्रय-संयुतं ॥ क १ ॥ खकारं परमाश्चर्यं शङ्ख-कुन्द-सम-प्रभं । कोगतश्व-युतं शून्यं विन्दु-त्रय-समन्वितं । गुण-त्रय-युतं देवि पञ्च-देव-मयं सदा । त्रिशक्ति-संयुतं वर्णं खकारं प्रणमाम्यहं ॥ ख २ ॥ गकारं परमेशानि पञ्च-देवात्मकं सदा । निर्गुणं त्रिगुणोपेतं निरीहं निर्मलं सदा । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं सर्व-शक्त्यात्मकं प्रिये ! अरुणा-दित्य-सङ्काशं कुण्डलीं प्रणमाम्यहं ॥ ग ३ ॥ घकारं चञ्चलापाङ्गि ! चतुष्कोणात्मकं सदा । पञ्च-देव-मयं वर्णं अरुणादित्य-सन्निभं । निर्गुणं त्रिगुणोपेतं सदा त्रिगुण-संयुतं । सर्वगं सर्वदं शान्तं घकारं प्रणमाम्यहं ॥ घ ४ ॥ ङकारं परमेशानि ! स्वयं परम-कुण्डली । सर्व-देव-मयं वर्णं त्रिगुणं लोल-लोचने ! पञ्च-प्राण-मयं वर्णं ङकारं प्रणमाम्यहं ॥ ङ ५ ॥

चवर्णं शृणु सुश्रोणि ! चतुर्वर्ग-प्रदायकं । कुण्डली-सहितं देवि ! स्वयं परम-कुण्डली । सततं कुण्डली-युक्तं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं पञ्च-प्राणात्मकं सदा । त्रिशक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं प्रिये ॥ च ६ ॥ छकारं परमाश्चर्यं स्वयं परम-

कुण्डली । सततं कुण्डली-युक्तं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं त्रि-शक्ति-सहितं सदा । त्रि-विन्दु-सहितं वर्णं सदा ईश्वर-संयुतं । पीत-विद्युल्लताकारं छकारं प्रणमाम्यहं ।। छ ७ ।। जकारं परमेशानि ! या स्वयं मध्य-कुण्डली । शरच्चन्द्र-प्रतीकाशं सदा त्रिगुण-संयुतं । पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं प्रिये ।। ज ८ ।। झकारं परमेशानि ! कुण्डली मोक्ष-रूपिणी । रक्त-विद्युल्लताकारं सदा त्रि-गुण-संस्थितं । पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राणात्मकं सदा । त्रि-विन्दु-सहितं वर्णं त्रि-शक्ति-सहितं सदा ।। झ ९ ।। सदा ईश्वर-संयुक्तं ञकारं शृणु सुन्दरि ! रक्त-विद्युल्लताकारं स्वयं परम-कुण्डली । पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं सदा ।। ञ १० ।।

टकारं चञ्चलापाङ्गि ! स्वयं परम-कुण्डली । कोटि-विद्युल्लताकारं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राण-युतं वर्णं गुण-त्रय-समन्वितं । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं सदा ।। ट ११ ।। ठकारं चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डली मोक्ष-रूपिणी । पीत-विद्युल्लताकारं सदा त्रिगुण-संयुतं । पञ्च-प्राणात्मकं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा । त्रि-विन्दु-सहितं वर्णं त्रि-शक्ति-सहितं

सदा ।। ठ १२ ।। डकारं चञ्चलापाङ्गि ! सदा त्रिगुण-संयुतं । पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं सदा । चतुर्ज्ञान-मयं वर्णं आत्मादि-तत्व-संयुतं । पीत-विद्युल्लताकारं डकारं प्रणमाम्यहं ।। ड १३ ।। ढकारं परमाराध्यं या स्वयं कुण्डली परा । पञ्च-देवात्मकं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा । सदा त्रिगुण-संयुक्तं आत्मादि-तत्व-संयुतं । रक्त-विद्युल्लताकारं ढकारं प्रणमाम्यहं ।। ढ १४ ।। णकारं परमेशानि स्वयं परम-कुण्डली । पीत-विद्युल्लताकारं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राण-मयं देवि ! सदा त्रिगुण-संयुतं । आत्मादि-तत्व-संयुतं महा-मोह-प्रदायकं ।। ण १५ ।।

।। इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे चतुर्थः पटलः ।।

पञ्चम पटल

श्रीमहादेव उवाच—तकारं चञ्चलापाङ्गि! स्वयं परम-कुण्डली। पञ्च-देवात्मकं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं तथा। त्रि-शक्ति-सहितं वर्णमात्मादि-तत्व-संयुतं। त्रि-विन्दु-सहितं वर्णं पीत-विद्युत्सम-प्रभं ॥ त १६ ॥

थकारं चञ्चलापाङ्गि! कुण्डली मोक्ष-रूपिणी। त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं सदा। पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राणात्मकं सदा। अरुणादित्य-सङ्काशं थकारं प्रणमाम्यहं ॥ थ १७ ॥

दकारं शृणु चार्वङ्गि! चतुर्वर्ग-प्रदायकं। पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा। त्रि-शक्ति-सहितं देवि! त्रि-विन्दु-सहितं सदा। आत्मादि-तत्त्व-संयुक्तं स्वयं परम-कुण्डली। रक्त-विद्युल्लताकारं दकारं हृदि भावय ॥ द १८ ॥

धकारं परमेशानि! कुण्डली मोक्ष-रूपिणी। आत्मादि-तत्व-संयुक्तं पञ्च-देव-मयं सदा। पञ्च-प्राण-मयं देवि! त्रि-शक्ति-सहितं सदा। त्रि-विन्दु सहितं वर्णं धकारं हृदि भावय। पीत-विद्युल्लताकारं चतुर्वर्ग-प्रदायकं ॥ ध १९ ॥

नकारं शृणु चार्वङ्गि! रक्त-विद्युल्लताकृतिं। पञ्च-देव-मयं वर्णं स्वयं परम-कुण्डली। पञ्च-प्राणात्मकं वर्णं हृदि भावय पार्वति ॥ न २० ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि पकारं मोक्ष-दायकं। चतुर्वर्ग-प्रदं वर्णं शरच्चन्द्र-सम-प्रभं। पञ्च-देव-मयं वर्णं स्वयं परम-कुण्डली। पञ्च-प्राण-मयं वर्णं त्रि-शक्ति-सहितं सदा। त्रिगुणै रहितं वर्णमात्मादि-तत्व-संयुतं। महा-मोक्ष-प्रदं वर्णं हृदि भावय पार्वति ॥ प २१ ॥

फकारं शृणु चार्वङ्गि! रक्त-विद्युल्लतोपमं। चतुर्वर्ग-प्रदं वर्णं पञ्च-देव-मयं सदा। पञ्च-प्राण-मयं वर्णं सदा त्रिगुण-संयुतं। आत्मादि-तत्व-संयुक्तं त्रि-विन्दु-सहितं सदा ॥ फ २२ ॥

बकारं शृणु चार्वङ्गि चतुर्वर्ग-प्रदायकं। शरच्चन्द्र-प्रतीकाशं पञ्च-देव-मयं सदा। पञ्च-प्राणात्मकं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं सदा। त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं सदा चामृत-निर्मितं। स्वयं कुण्डलिनी साक्षात् सततं प्रणमाम्यहं ॥ ब २३ ॥

भकारं शृणु चार्वङ्गि! स्वयं परम-कुण्डली। महा-मोक्ष-प्रदं वर्णमरुणादित्य-सन्निभं। पञ्च-प्राण-मयं वर्णं पञ्च-देव-मयं सदा। त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं प्रिये ॥ भ २४ ॥

मकारं शृणु चार्वङ्गि! स्वयं परम-कुण्डली।

अरुणादित्य-सङ्काशं चतुर्वर्ग-प्रदायकं । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं सदा । आत्मादि-तत्व-संयुक्तं हृदिस्थं प्रणमाम्यहं ॥ म २५ ॥

यकारं शृणु चार्वङ्गि ! चतुष्कोण-मयं सदा । पलाल-धूम-सङ्काशं स्वयं परम-कुण्डली । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं पञ्च-देव-मयं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं तथा । प्रणमामि सदा वर्णं मूर्तिमान् मोक्षमव्ययं ॥ य २६ ॥

॥ इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे पञ्चमः पटलः ॥

षष्ठ पटल

श्रीमहादेव उवाच—रकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डली-द्वय-संयुतं । रक्त-विद्युल्लताकारं पञ्च-देवात्मकं सदा । पञ्च-प्राण-मयं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं देवि ! आत्मादि-तत्व-संयुतं । सर्व-तेजोमयं वर्णं सततं प्रणमाम्यहं ॥ र २७ ॥

लकारं चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डली-त्रय-संयुतं । पीत-विद्युल्लताकारं सर्व-रत्न-प्रदायकं । पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राणात्मकं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णं त्रि-विन्दु-सहितं हि सा । आत्मादि-तत्व-सहितं हृदि भावय सर्वदा ॥ ल २८ ॥

वकारं चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डली मोक्षमव्ययं ! पञ्च-प्राण-मयं वर्णं त्रि-शक्ति-सहितं सदा । त्रि-विन्दु-सहितं वर्णमात्मादि-तत्व-संयुतं । पञ्च-देव-मयं वर्णं पीत-विद्युल्लतोपमं । चतुर्वर्ग-मयं वर्णं सर्व-सिद्धि-प्रदायकं । त्रि-शक्ति-सहितं देवि ! त्रि-बिन्दु-सहितं सदा ॥ व २९ ॥

शकारं परमेशानि ! स्वर्ण-वर्णं शुचि-स्मिते ! रक्त-वर्ण-प्रभाकारा स्वयं परम-कुण्डली । चतुर्वर्ग-प्रदा देवि ! शकारं ब्रह्म-विग्रहं । पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राणात्मकं

प्रिये ! रजः-सत्व-तमो-युक्तं त्रि-विन्दु-सहितं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णमात्मादि-तत्व-संयुक्तं ।। श ३० ।।

षकारं शृणु चार्वङ्गि ! कोण-षट्क-मयं सदा । रक्त-चन्द्र-प्रतीकाशं स्वयं परम-कुण्डली । चतुर्वर्ग-प्रदं वर्णं सुधा-निर्मित-विग्रहं । पञ्च-देव-मयं वर्णं पञ्च-प्राण-मयं सदा । रजः-सत्व-तमो-युक्तं त्रि-विन्दु-सहितं परं । सर्व-देव-मयं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।। ष ३१ ।।

सकारं शृणु चार्वङ्गि ! शक्ति-वीजं परात्परं । कोटि-विद्युल्लताकारं कुण्डली-त्रय-संयुतं । पञ्च-देव-मयं देवि पञ्च-प्राण-मयं सदा । रजः-सत्व-तमो-युक्तं त्रि-विन्दु-सहितं सदा । त्रि-शक्ति-सहितं वर्णमात्मादि-तत्व-संयुतं । प्रणम्य सततं देवि ! हृदि भावय सुन्दरि ।। स ३२ ।।

हकारं शृणु चार्वङ्गि ! चतुर्वर्ग-प्रदायकं । कुण्डली-त्रय-संयुक्तं रक्त-विद्युल्लतोपमं ! रजः-सत्व-तमो-युक्तं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राणात्मकं वर्णं त्रि-शक्ति-सहितं सदा । त्रि-विन्दु-सहितं वर्णं हृदि भावय सुन्दरि ।। ह ३३ ।

क्षकारं शृणु चार्वङ्गि कुण्डली-त्रय-संयुतम् । चतुर्वर्ग-मयं वर्णं पञ्च-देव-मयं सदा । पञ्च-प्राणात्मकं वर्णं त्रि-शक्ति-सहितं सदा । त्रि-विन्दु-सहितं वर्णमा-

त्मादि-तत्त्व-संयुतम् । शरच्चन्द्र-प्रतीकाशं हृदि भावय सुन्दरि ।।क्ष३४।।

अकारादि-क्षकारान्तं स्वयं परम-कुण्डली । सर्वं चराचरं विश्वं वर्णात्तु जायते ध्रुवम् । नाना-शास्त्रं पुराणं च इतिहासं च सुन्दरि ! वेदं च स्मृति-शास्त्रं च अन्यानि यानि कानि च । अक्षराज्जायते सर्वं परं-ब्रह्म स्वयं शिवे ।।

।। इति कामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे षष्ठः पटलः ।।

सप्तम पटल

श्रीमहादेव उवाच—रहस्यम् परमाश्चर्यं सदा मम हृदि स्थितं । अतः परं प्रवक्ष्यामि मन्त्र-तत्वं पृथक्-पृथक् । मातृकाया वरारोहे ! सावधानावधारय । अतः परं जपेन्मन्त्रं पञ्चाशन्मातृकां पृथक् । अतस्त्वम-विकारी स्यान्नात्र कार्या विचारणा । इति ते कथितं देवि ! प्रयोगं मन्त्रमुत्तमं । एतन्मन्त्रं विना देवि ! इष्टं मन्त्रं जपेन्नरः । सर्वं तस्य भवेद्व्यर्थं सर्वं व्यर्थ-कदर्थ-नम् । एतन्मन्त्रं प्रथमतो दशधा प्रजपेत् प्रिये ! ततस्तु प्रणवं दत्वा मातृकां प्रजपेत् पृथक् । प्रयोगं परमाश्चर्यं सावधानावधारय । तद्यथा--

ॐ अं ॐ ॐ आं ॐ ॐ इं ॐ ॐ ईं ॐ
ॐ उं ॐ ॐ ऊं ॐ ॐ ऋं ॐ ॐ ॠं ॐ
ॐ लृं ॐ ॐ ॡं ॐ ॐ एं ॐ ॐ ऐं ॐ ॐ ओं ॐ
ॐ औं ॐ ॐ अं ॐ ॐ अः ॐ । ॐ कं ॐ ....

एवं क्षकार-पर्यन्तं प्रणवैः पुटितं सदा । प्रत्येकमेवं चार्वङ्गि ! दशधा दशधा जपेत् । प्रत्येकं जप-मात्रेण प्रत्येकं ध्यानमाचरेत् । अथवा सर्व-वर्णानामेकीकृत्य वरानने ! प्रजपेद्दशधा मन्त्रं स्व-मन्त्रं प्रजपेत्ततः । तथा च सर्व-वर्णानां ध्यानं वक्ष्यामि संश्रृणु ।

कोटि-चन्द्र-प्रतीकाशां पुण्डरीकोपरि-स्थितां ।
भ्रमद् भ्रमर-लीलाभां नयन-त्रय-राजितां ॥
नाना-शास्त्र-प्रवक्त्रीं च विद्याभ्यास-मयीं सदा ।
नाना-वाद्य-मयीं देवीं श्वेतां शुक्ल-परिष्कृतां ।
शुक्लाभरण-दीप्ताङ्गीं शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिणीं ॥
ब्रह्माण्डं दर्पणे यस्या वाम-हस्तस्य पार्वति !
तद्वच्छुक-शिशुं प्रेक्ष्य क्षुद्र-दर्पणमुच्यते ॥

एवं ध्यात्वा जगद्धात्रीं मातृकां जगदम्बिकां । प्रजपेद् दशधा मन्त्रमेकधा वा जपेत्तु यः । सर्व-सिद्धिम-वाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । एषा ते कथिता विद्या मातृका परमात्मिका । यत्कृत्वा साधको याति दुर्लभं मोक्षमव्ययम् । प्रत्येकेनाथवा देवि ! एकैकैव वरानने !

रहस्यं श्रृणु चार्वङ्गि ! सुगोप्यं भुवन-त्रये । इष्ट-विद्यां सकृत् स्मृत्वा मनसा परमेश्वरि ! यस्य मन्त्रस्य यद् ध्यानं कृत्वा देवि ! प्रयत्नतः । तन्मन्त्रं दशधा जप्त्वा इष्ट-ध्यानं ततः प्रिये ! इष्ट-मन्त्रं प्रजप्त्वा वै सर्व-सिद्धि ततो लभेत् । अनेन विधिना देवि ! मन्त्रश्चैतन्यमाप्नुयात् । चैतन्य-रहितं मन्त्र-मेकधा तु स्मरेत्तु यः । कोटि-पुरश्चरं याति नान्यथा वर-वर्णिनि ! ध्यानं च पूजनं चैव जप-होमं तथैव च । सर्वं व्यर्थं महेशानि ! अरण्ये रोदनं यथा ।

श्रीमहादेव उवाच—अपरं शृणु चार्वङ्गि ! वर्गाष्टकमनुत्तमम् । वर्गाष्टकं विना देवि ! कोटि-पुरश्चरं यदि । सर्वं तस्य वृथा देवि ! अन्ते च नरकं व्रजेत् । अ-क-च-ट-त-प-य-शा इत्येदष्ट-वर्गकम् । मन्त्रस्यादौ च अन्ते च अकारं विन्दु-संयुतम् । दत्वा तमेव भक्त्या च अष्टोत्तर-शतं जपेत् । अनेन विधिना देवि ! आदित्याभं समाचरेत् । तावज्जपेद् वरारोहे ! यावल्लक्षं समाप्यते । ततो मन्त्रं वरारोहे ! ध्रुवं जीवत्वमाप्नुयात् ।

जीवत्वं हि विना देवि ! न पुरश्चरणं चरेत् । जीवत्वं हि विना देवि ! यदि कुर्यात् पुरश्चरम् । विफला तस्य सा सर्वा पूर्व-पुण्यं विनश्यति । वर्गाष्टकेन सहितं प्रत्यहं प्रजपेत् शतम् । सदैव सहसा भद्रे ! सर्वं मन्त्रं च सिध्यति । किं तस्य ध्यान-पूजायां पुरश्चर्यां च किं पुनः ।

कृत्वा तु जीवं मन्त्रस्य विद्यां च वर-वर्णिनि ! विद्यायाश्च तथा देवि ! यः कुर्यात् प्राण-निर्णयं । तत्क्षणाद् यान्ति चार्वङ्गि ! पुरश्चर्यां शतं शतम् । विशेषतः कलि-युगे जम्बू-द्वीपस्य भारते । प्राण-न्यासं विना देवि ! न जपेत् साधकः क्वचित् । वैष्णवेषु च मन्त्रेषु शैवेषु शक्ति-मन्त्रेषु । गणेश-सौर-मन्त्रे च प्राण-न्यासं

प्रशस्यते । किं तस्य जप-पूजासु होमादिषु च किं प्रिये ! प्राण-तत्वं महेशानि ! यो जानाति स पूजकः । प्राण-तत्वं विना देवि ! देह-न्यासं करोति यः । स भ्रष्टः स च पापिष्ठो रौरवं नरकं व्रजेत् । आलोक्य तन्मुखं देवि ! सूर्य-दर्शनमाचरेत् ॥

॥ इति कामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे सप्तमः पटलः ॥

अष्टम पटल

श्रीमहादेव उवाच—एतत्ते कथितं भद्रे ! रहस्यं परमं तु यत् । यन्नोक्तं सर्व-तन्त्रेषु मातृकायाः पृथक् पृथक् । पञ्चाशद्-वर्ण-संकेतं पञ्चाशत्-तत्त्वमुत्तमं । सर्व-देव-मयं तत्त्वं सर्व-ज्ञान-मयं तथा । विन्दु-तत्व-मयं देवि ! अहं तत्व-मयं तथा । सर्व-शक्ति-मयं तत्त्वं सर्व-प्राण-मयं तथा । गर्भ-तत्व-मयं देवि ! केवलं कलिका तथा । कुसुमस्य यदा देवि ! कलिकां गन्ध-संयुतां । अदृश्यं सर्व-भूतानां तथा गन्धं शुचि-स्मिते ! पुष्पस्य कलिका-मध्ये यथा ज्योतिः प्रदीप्यते । तथैव कलिका-वीजे नव-तत्वं च विद्यते ।

कोटि-विद्युत्-प्रतीकाशां मातृकां प्रणमाम्यहं ।
निराबाधां निर्गुणां च गुणानां गुण-मातृका ।
माता सा सर्व-विद्यानां सर्वागम-प्रतिष्ठिता ।
सर्वासां वेद-विद्यानां ब्रह्माण्डानां च पार्वति !
माता सा गीयते देवि! पञ्चाशन्मातृका च सा ।

मन्त्र-तत्वं च विद्यां च सर्व-वर्ण-विनिश्चयम् । पञ्चाशद्-युवती-रूपा मातृका शवमव्यया । मातृका परमेशानि ! कालो साक्षान्न संशयः । कुतो ब्रह्मा कुतो विष्णुः कुतो रुद्रश्च ईश्वरः । सदाशिवः कुतो देवि ! ते सर्वे शव-वत् प्रिये ! शव-वत् सर्व-देवाश्च ब्रह्माण्डं शव-वत् सदा । अतएव वरारोहे ! विष्णु-मन्त्रं यथा तथा । शिव-मन्त्रं यथा देवि ! गणेशं सौरमेव च । शक्ति-मन्त्रं च विद्यां च पञ्चाशद्-युवती-मयं । पुराणं च तथा वेदं स्मृति-शास्त्रं तथैव च । एतत्-तत्वं वरारोहे ! युवती-रूपमद्भुतम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । ते सर्वे चञ्चलापाङ्गि ! मातृकाज्जायते प्रिये !

समस्त-जननी देवि मातृका जननी परा । कटाक्ष-लक्ष-संयुक्ता महा-शक्तिः प्रगीयते । मातृका-वर्ण-रहितं ब्रह्माण्डं शव-वत् प्रिये ! गीतं वाद्यं श्रुतिर्नाट्यमालापं वर-वर्णिनि ! सर्वं हि युवती-रूपं ध्यान-मार्गे प्रतिष्ठितं । एतत्ते कथितं देवि कालिका-वीजमुत्तमं । उभयोः सङ्गमं देवि ! प्रफुल्लं भवति प्रिये ! बहवः सङ्गमे देवि प्रफुल्लं मोक्षमव्ययं । यन्न मन्त्रेषु विद्यासु प्रफुल्लं भवति ध्रुवं । प्रफुल्लं शृणु चार्वङ्गि ! जप-यज्ञं समाचरेत् । प्रफुल्ल-रहितं देवि ! विद्या-मन्त्रं यदि प्रिये ! केवलं कालिका-वीजं वर्णैर्वर्णैः पृथक्-पृथक् ।

ध्यात्वा सिद्धिमवाप्नोति नान्यथा सुर-पूजिते ! प्रफुल्लात् कलिकाद्वापि कृष्णादि जायते ध्रुवं । युवती या समाख्याता सा महा-कुण्डली परा । वर्ण-रूप-मयी

देवी कुण्डली पर-देवता । पञ्चाशद्-वर्ण-तत्वं च विद्या-मन्त्रं जपेत्तु यः । सर्वं हि विफलं तस्य शव-वत् तज्जपं भवेत् । चैतन्य-रहितं देवि ! तज्जपं शवमेव तत् । ज्ञात्वा प्रणम्य कुर्वीत जप-पूजादिकं प्रिये !

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् सगुणा पर-कुण्डली । तस्मात्तु युवती-देहात् हरेरुत्पत्तिरेव च । सर्वासां देव-देवीनां बीजं जन्म-स्थलं सदा । बीजात्तु जायते ब्रह्म शून्य-रूपी सनातनः । अतएव महेशानि ! ब्रह्मणः कारणं परा । ज्ञात्वा तन्त्रमिदं देवि ! जप-पूजां करोति यः । प्राण-न्यास-विधिं कृत्वा जप-पूजां करोति यः । स शिवः परमं ब्रह्म स एव पुरुषोत्तमः । स एव दिव्यो वीरश्च स एव भैरवः स्वयं । स एव धन्यो देवेशि ! त्रैलोक्ये स चराचरे । स सूर्यो देवि ! पूज्यश्च सद्गुरुश्च न चान्यथा । उद्धर्तुं चैव संहर्तुं समर्थः सोऽपि नान्यथा ।

अज्ञात्वा तन्त्रमेतत्तु जप-यज्ञं करोति यः । सर्वं तस्य वृथा देवि ! पशुरेव न संशयः । सर्वेषु च गुरु-र्देवि ! शिष्योऽपि पशुवत् सदा । श्रुत्वा तस्य मुखे विद्यां मन्त्रं वा नग-नन्दिनि ! सिक्तो भवति चार्वङ्गि ! किं तस्य जप-पूजनैः । एवं विधं गुरुं त्यक्त्वा श्रुत्वा पशु-मुखात् प्रिये ! पूर्व-मन्त्रं परित्यज्य गृह्णीयाद् गणना-

परं । स भ्रष्टः स च पापिष्ठः कथं मन्त्रमुपास्महे ।

मन्त्रस्य गणनाद् देवि! यत् पापं प्राप्नुयान्नरः । तत् पापं शृणु चार्वङ्गि ! नरकं चोत्तरोत्तरं । यत् पापं प्राप्नुयाद् देवि! स्वयम्भू-लिङ्ग-चालने । तत् पापं कोटि-गुणितं गणनाद् देव-मन्त्रयोः । तस्मात्तु गणनां देवि ! वर्जयेन्मति-मान्नरः । त्यक्त्वा शैव-वैष्णवेषु सौरे गाणपते तथा । अन्यत् सर्वासु विद्यासु गणनां वर्जयेन्नरः ॥

॥इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादेऽष्टमः पटलः॥

नवम पटल

श्रीमहा-देव उवाच—अधुना सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं गुह्यमुत्तमं। यज् ज्ञात्वा साधको याति दुर्लभं ब्रह्म-मन्दिरं। इडया पूरयेद् वायुं सुषुम्नान्तर्गतं ततः। रेचयेत् पिङ्गला-मार्गे प्राणायाम-क्रमं प्रिये ! अनुलोमेन चार्वङ्गि! मातृकां युवतीं स्मरेत्। पञ्चाशन्मातृका-वर्णं सविन्दुं नाद-संयुतं। उच्चार्यं पूरकेणैव तत इष्टं समुच्चरेत्। ततस्तु मातृका-वर्णं विलोमेन जपेत् प्रिये! सुषुम्ना-मध्य-देशे तु चित्रिणी सुवरानने। अनुलोम-विलोमेन मातृकां युवतीं स्मरेत्। इष्ट-मन्त्रं ततो जप्त्वा विलोमं कुरु यत्नतः। अनेनैव विधानेन रेचयेत् पिङ्गला-पथे।

एवं द्वादशधा कृत्वा प्रत्यहं वर-वर्णिनि ! त्रि-सन्ध्यां चञ्चलापाङ्गि ! यः कुर्यात् कमलानने ! जीव-न्यासं भवेत् तस्य मन्त्र-सिद्धिश्च नान्यथा। एकधा वा महेशानि ! कलौ संख्या चतुर्गुणा। प्रत्यहं दशधा कृत्वा शिव-तुल्यो भवेन्नरः॥

॥इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे नवमः पटलः॥

दशम पटल

श्रीमहा-देव उवाच—ललाट-तत्वं चार्वङ्गि ! अकारं सर्वदा प्रिये ! आकारं मुख-तत्वं तु शृणुष्व वर-वर्णिनि ! इकारं दक्ष-नेत्रञ्च ईकारं वाम-नेत्रके। उकारं दक्ष-कर्णे स्यादूकारं वाम-कर्णके। ऋकारं दक्ष-नासा च ॠकारं वाम-नासिके। ऌकारं दक्ष-गण्डं स्यात् ॡकारं वाम-गण्डकं। एकारं अधरं तत्वं ऐकारं ओष्ठ एव च। ओकारं ऊर्ध्व-दन्तं स्यात् औकारश्चाध-दन्तकम्। अंकारं शिरसस्तत्त्वं अःकारं मुख-मण्डलम्। ककारादि पञ्च-तत्त्वं दक्ष-बाहौ प्रशस्यते। वाम-बाहौ चकारादि पञ्च-तत्त्वं च तिष्ठति। दक्ष-पादे टकारादि पञ्च-तत्त्वं वरानने ! तकारादि पञ्च-तत्त्वं वाम-पादे प्रशस्यते। पकारं दक्ष-पार्श्वं च फकारं वाम-पार्श्वके बकारं पृष्ठ-तत्त्वञ्च भकारं नाभिरेव च। मकारं उदरं तत्त्वं यकारं हृदयं तथा। रकारं स्कन्ध-तत्वञ्च लकारं वाममेव च। घटि-तत्त्वं वकारञ्च शकारं दक्ष-बाहुषु। वाम-बाहौ षकारञ्च सकारं दक्ष-पादकम्। वाम-पादं हकारं च क्षकारं शिरसोपरि।

अकारं बीज-तत्वं च तकारं प्रणवेन च। मकारञ्च सकारञ्च मण्डितं हि तथैव च। अहङ्कारः पकारः

स्यात् फकारो मनसस्तथा । नकारं शब्द-तत्त्वञ्च दंधं रूप प्रशस्यते । गकारं पाद-तत्त्वञ्च छकारोपस्थमेव च । उकारमाकाश-तत्वञ्च ऊकारं श्रोत्रमेव च । त्वक्-तत्वं च जकारः स्यात् झकारः पादमेव च । ककारः पृथिवी-तत्वं खकारो ज्ञान-तत्वकं । शकारं हृत्पुण्डरीकं षकारं तत्व-मण्डलं । सकारञ्च तथा चन्द्रं रकारं वह्नि-मण्डलम् । परमेष्ठि तथा तत्वं यकारं सुर-पूजिते । लकारं पृथिवी-तत्त्वं हकारञ्च शिरस्तथा । एतयोर्योगमासाद्य क्षकारं तत्त्व-विग्रहम् ।

तेन अ-त-म-स-प-फ-न-द-ध-ग-छ-उ-ऊ-ज-झ--क-ख-श-ष-स-र-य-ल-ह-क्ष ।

[यकारं वायु-तत्वञ्च ककारं स्वर्गमेव च । तकारो गन्ध-तत्वं च चकारः श्रोत्रमेव च । कतत्वं च जकारः स्यात् झकारः पादमेव च । जकारो जल-तत्वं स्याद् ककारः पृथिवी प्रिये ! मकारं हृत्-पुण्डरीकं घकारः सूर्यमेव । मकारं च तथा चन्द्रं वकारं वह्नि-मण्डलम् । परमेष्ठि तथा तत्त्वं मकारं सुर-पूजिते ! नकारं पृथिवी-तत्त्वं फकारश्च शिवस्तथा । क्षकारं विग्रहं मन्ये इति शृणु सुलोचने ! मातृका सा वरारोहे ! क्रमान्नामानि शृणु । खकारो जल-तत्त्वं च गकारस्तेज उच्यते । तकारो गन्ध-तत्त्वं च चकारः श्रोत्रमेव च ।

त्वक्-तत्वं च जकारः स्यात् जकारः पृथिवी तथा । हकारश्च शिवः प्रोक्तः क्षकारस्तत्व-विग्रहः ।]

अकारादि-क्षान्त-वर्णं तत्त्वञ्च पञ्च-विंशतिः । सर्व-तत्वमति-गुह्यं परमात्मा सुलोचने ! मातृकाया वरारोहे ! क्रमान्नामानि संशृणु । ब्रह्माणी चण्डिका रौद्री गौरीन्द्राणी तथैव च । कौमारी वैष्णवी दुर्गा तथैव नारसिंहिका । कालिका मुण्ड-माला च शिव-दूती तथा परा । वाराही कौशिकी चैव तथा माहेश्वरी प्रिये ! शङ्करी च जयन्ती च मङ्गला कलि-मर्द्दिनी । पालिका चैव मेधा च शिव-रूपा च शाम्भवी । भीमा शान्ता च उग्रा च भ्रामरी रुद्र-रूपिणी । अम्बिका बहु-रूपा च क्षेमा क्षेमङ्करी तथा । धात्री-रूपा स्वधा स्वाहा तथैव वह्नि-रूपिणी । अपर्णा च तथा माया घोर-रूपा प्रियम्वदा । ब्रह्माण्ड-वाणी ब्राह्मी च पञ्चाशन्मातृका स्मृता । इत्येतत् कथितं सम्यक् केवलं तव भक्तितः । एतास्तु मातृका-देव्यो ब्रह्माण्डं सचराचरम् । व्याप्य तिष्ठन्ति चार्वङ्गि ! नाना-मूर्त्ति-धराऽव्यया । शक्ति-मन्त्रे विष्णु-मन्त्रे शैवे सौरे च पार्वति ! अन्य-सर्वेषु मन्त्रेषु गणेशे वर-वर्णिनि ! मातृका युवती-रूपा मन्त्र-विग्रह-रूपिणी । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदा-शिवः । ते सर्वे चञ्चलापाङ्गि ! निश्चलाश्च निरि-

न्द्रियाः । देवादीनां वरारोहे ! मन्त्रं नास्ति कदाचन । शब्द-ब्रह्म यदा याति मन्त्र-तत्वं तदा भवेत् । पञ्चाशद्-युवती सर्वा शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी । ब्रह्मणः कारणं नास्ति प्रकृतेरस्ति भाविनि ! प्रकृतेर्या वरारोहे ! सा दीक्षा सर्व-सम्मता । दीक्षायां चञ्चलापाङ्गि ! प्रशस्ता युवती कला । पञ्चाशन्मातृका या सा युवती परिगीयते । युवती-रहितं देवि ! कुतो विद्या कुतो मनुः । निर्गुणं परमं ब्रह्म प्रधाना युवती-गणाः ॥

॥इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे दशमः पटलः॥

एकादश पटल

श्रीमहा-देव उवाच—यथा ज्ञानं चन्द्र-सूर्यस्तथा मन्त्रे प्रतिष्ठिता । देवीनां ज्योतिषः पुञ्जो वर्त्तन्ते प्रकृतेः कलाः । अथान्तरात्मा परमं ज्ञानात्मा सुवरानने ! वर्त्तन्ते युवती-रूपाः षोडश-प्रकृतेः पराः । प्रकृतिं हि विना देवि ! ज्ञात्वा ब्रह्मा सनातनः । अत-एव वरारोहे ! स एव श्रीसदाशिवः । जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिर्या तुरीया वर-वर्णिनि ! तास्ताः सर्वा वरारोहे ! युवती परमा परा । कार्य-कारण-काले च गणनीया वरानने !

शून्यात् शून्यं परं शून्यं शून्य-रूपं निरञ्जनम् । कोटि-सूर्य-प्रतीकाशं निर्मलं ज्ञानमुत्तमम् । हृदि भावय चार्वङ्गि ! तेजः-पुञ्जं महाप्रभम् । तेजस्तु प्रकृतिः साक्षात् सर्व-व्यापि-पराक्षा । भावना जायते देवि ! शरीरं मरकत्-प्रभम् । दलिताञ्जनं पुञ्जाभं वर्ण-राजं वरानने ! त्रिभङ्ग-ललिताकारं चारु-चूडा-विराजितम् । शिखि-पुच्छ-युतं चूडं भ्रमरैः शोभितं परम् । पीतांशुक-परीधानं वन-माला-विभूषितम् । रत्न-कुण्डल-संयुक्तं स्फुरद्-गण्ड-मनोहरम् । कदम्ब-कुसुमोपेतं श्रवणं जन-मोहितम् । श्रीवत्स-कौस्तुभोद्दीप्तं आजानु-बाहु-

राजितम् । आरक्त-नयन-द्वन्द्वं कोटि-विद्युत्-समद्युतिम् । आरक्त-चरण-द्वन्द्वं नूपुराराव-संयुतम् । आरक्त-करतल-स्वच्छं गुञ्ज-माला-विराजितम् । शब्द-ब्रह्म-मयं विष्णुं इकारं शब्द-जल्पितम् । एवं रूपं समुत्पन्नं हृदि मध्ये वरानने ! जायते काम-बीजात्तु शून्य-मध्ये सुलोचने !

शून्य-मध्ये स्थिता देवि ! काम-बीज-स्वरूपिणी । लकार-संयुता या सा कृष्ण-माता प्रगीयते । सर्वेषु विष्णु-मन्त्रेषु काम-बीजं परात्परं । हृदि शून्ये महेशानि ! विष्णोर्मन्त्रं जपेत् प्रिये ! ततो वै काम-बीजात्तु जायते विष्णु-विग्रहं । अतः काम-मयं विष्णुं हृदि भावय पार्वति !

कामिनी या महेशानि ! विष्णु-माता प्रगीयते । ततो वै विष्णु-वर्णं तु वाम-देवमवाप्नुयात् । ककारः कामिनी साक्षात् लकारः पृथिवीश्वरी । रतिस्तु मह्निनी साक्षात् नादस्तु योनि-रूपिणी । विन्दुः कुण्डलिनी-रूपं शिव-शक्ति-मयं प्रिये ! इदं बीजं महेशानि ! विष्णु-माता पराक्षरा । निरक्षरो विष्णु-देवः ह्यक्षराज्जायते ध्रुवम् । अतएव वरारोहे ! ब्रह्मणः कारणं परा । क्लींकार-वीज-रूपा या सा परा परिगीयते । परात्पर-तरा साऽपि वह्नि-मण्डल-संयुता । कामिनी सा महेशानि ! पृथिवी तस्य आसनम् । कदाचित् पृथिबी-मध्ये

कदाचित् वह्नि-मण्डले । वसते कामिनी देवी नाद-बिन्दु (बिन्दु-त्रय) समन्विता ।

जन्म लब्ध्वा महा-विष्णुः कूर्च-बीजं जपेत् प्रिये ! अनेन प्रजपेन्मन्त्रं हुंकारं वर-वर्णिनि ! विष्णोर्विग्रहणे तत्तु स्वयं प्रकृति-मूर्त्तिमान् । प्रकृतिः परमाराध्या देवानां नग-नन्दिनि ! हुंकारं परमाश्चर्यं बीज-रत्नं शृणु प्रिये ! षष्ठ स्वरः परिचयो वियद्-बीजं शशि-प्रभम् । तस्योपरि वरारोहे ! सदा बिन्दुं विभावय ।

काम-मन्मथ-कन्दर्पमक्षर-ध्वज-संज्ञकं । मीन-केतुर्महेशानि ! पञ्च-बीजं प्रकीर्तितम् । माया कूर्चं वधू-बीजं लक्ष्मी-बीजं च पार्वति ! प्रणवश्च महेशानि ! स्वयं चतुर्दशं तथा । सपिण्डवत्तथा देवि ! येषु यासु च विद्यते [पिण्डाक्षरं तथा देवि ! स्वेषु स्वेषु च विद्यते ।] तन्मन्त्रमति-सिद्धं स्यात् परः प्रकृति-रूपिणी । एवं बीजं सकृत् ध्यात्वा सर्वासां भवति प्रिये ! तन्मन्त्रं प्रजपेद् देवि ! बीज-ध्यानं पुनः प्रिये ! एवं हि दशधा कृत्वा मन्त्राणां बीज-साधनम् । तस्मात् बीजात् समाकृष्य देवता-रूपमुद्भवम् । देव-ध्यानं ततः कृत्वा इष्ट-मन्त्रं ततो जपेत् । पुनर्ध्यानं देवतायाः पुन-र्जपं कुरु प्रिये ! एवं हि दशधा कृत्वा देवादि नाम एव [देवताधिष्ठानमेव, देवता-ध्यानमेव] च । ततः

सप्तच्छदां जप्त्वा कुल्लुकां दशधा जपेत् । आद्यन्ते सेतु-मन्त्रं च दत्वा अष्टोत्तरं जपेत् । तन्मन्त्रं प्रजपेद् देवि ! एवं सिद्धिमुपालभे ।

।।इति कामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे एकादशः पटलः।।

द्वादश पटल

श्रीमहा-देव उवाच—अपरैकं प्रवक्ष्यामि रहस्य-मति-गोपनम् । अकृत्वा ध्यान-तत्त्वं च अष्ट-तत्त्वं तथैव च । अकृत्वा व्यर्थतां याति नात्र कार्या विचारणा। ततो जीवत्वमाप्नोति मन्त्रं सिध्यति तत्क्षणात्। अथवा परमेशानि ! मन्त्र-वर्णं यथा तथा। प्रणव-पुटितं कृत्वा अनुलोम-विलोमतः। तदैव परमेशानि ! जीवत्वं प्राप्यते मनुः। एकधा वा त्रिधा कृत्वा यदि कुर्याद् वरानने ! तदा सिद्धिमवाप्नोति नान्यथा सुर-पूजिते ! जीवत्वं हि बिना देवि ! यं मन्त्रं प्रजपेत् सुधीः। तज्जपं चञ्चला-पाङ्गि ! शवमेव न संशयः ।

सदा निद्रातुरो मन्त्री जीव-हीनश्च पार्वति !...... (श्रीं क्लीं ह्रीं हुं स्त्रीं श्रीं ॐ)...कथं सिद्धिमवाप्नोति निद्रायां वर-वर्णिनि ! जीव-न्यासेन चार्वङ्गि ! निद्रा-भङ्गो भवेद् ध्रुवम् ।

बिन्दु-तत्त्वं प्रजप्याथ ज्ञान-तत्त्वं च सुन्दरि ! प्राण-तत्त्वं च चार्वङ्गि ! देव-तत्त्वं तथैव च। जप-तत्त्वं मन्त्र-तत्त्वं ध्यान-तत्वं सुलोचने !

अक्षरे अक्षरे देवि ! अज्ञात्वा प्रजपेद्यदि। सर्वं व्यर्थं भवेद् देवि ! कुतः पूजा कुतो जपः। सर्वं व्यर्थं

भवेत् तस्य चान्त्ये नरकमाप्नुयात् । संयोगं यद्भवेद् योगं प्रफुल्लं तदुदाहृतम् । केवलं कलिका-बीजं तद्-वर्णं सुर-पूजिते ! आगतं मम वक्त्राद् यद् गतं तव मुखे सदा । मतं श्रीवासुदेवस्य इति ते कथितं प्रिये ! एतन्मन्त्रं महा-गुह्यं ईशान-मुख-संयुतम् । एतन्मन्त्र-प्रभावाद्धि काल-कूटं पिबाम्यहम् । एतास्तु मातृका-वर्णाः सुषुम्ना-मध्य-वर्तिनो । एते वर्णा वरारोहे ! महा-योग-मयाः सदा । अक्षरं हि विना देवि ! न योगो जायते मम । योग-मार्गे भक्ति-मार्गे मुक्ति-मार्गे च सुन्दरि ! ध्यान-मार्गे तु पूजायां जप-मार्गे तथैव च । एतास्तु युवती-वर्णाः कार्य-कारण-रूपिणः ॥

एतन्मन्त्रमविज्ञाय न जप्तव्यं न कदाचन । एतन्मत्रमविज्ञाय पुराणं संहितां स्मृतिम् । पठेन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह नान्यथा । सर्व-धर्मेषु यत्-कर्म सर्व-यज्ञेषु यत्-फलम् । सर्व-दानेषु तीर्थेषु यत्-फलं प्राप्नुयाद् द्विजः । तत्फलं समवाप्नोति वर्णानां ध्यान-मात्रतः । वर्ण-ध्यानमविज्ञाय वर्ण-तत्त्वं तथैव च । पुराण-वाचको यस्तु ध्रुवं नरकमाप्नुयात् । कोटि-वंशान् समादाय स द्विजो नरकं व्रजेत् । यथा वक्ता तथा श्रोता द्वयोरपि फलं समं । कथमज्ञानतो मूर्खो ऽज्ञात्वा वर्ण-विनिर्णयं । पुराणानि पठित्वा वै निश्चयं

नरकं व्रजेत् । निश्चयं च महेशानि ! दारिद्र्यं घोरमाप्नुयात् । निश्चयं रोगमाप्नोति जम्बू-द्वीपस्य भारते ।

स स्यात् सनातनो देवो वाणी त्रिपुर-सुन्दरी । सर्वासां युवतीनां च भवानी चाधि-देवता । ध्यायेद् देवीं महा-मायां मातृकां जगदीश्वरीम् । रक्त-पद्मासन-गतां रक्तांशुक-परिष्कृताम् । रक्त-चन्दन-लिप्ताङ्गीं रक्त-वस्त्रोत्तरीयिणीम् । रक्त-बिम्ब-फलाभासां राका-चन्द्र-मुखीं पराम् । भ्रमद्-भ्रमर-लीलाभ-नयन-त्रय-राजिताम् । कटाक्ष-शत-संयुक्तां चारु-चूडा-विनोदिनीम् । रत्नालङ्कार-सुभगां त्रिभङ्गि-ललिताकृतिम् । हास्य-युक्तां प्रफुल्लास्यां ज्योत्स्ना-जाल-समच्छविम् । मृणाल-सदृशाकार-बाहु-वल्ली-विराजिताम् । कञ्चुली-संयुतां रम्यां कदम्ब-कोरक-स्तनीम् । नखानां किरणो-द्योतैर्भुवनं परिमोहयन् । एवं ध्यात्वा महा-मायां भवानीं शिव-मोहिनीम् ।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । हृत्पद्मे द्वादश-दले वराटोपरि भावयेत् । यस्य देवस्य यद्-बीजं प्रफुल्ल-कलिकां तथा । ध्यात्वा देवीं यथा-शक्त्या तस्मादाविर्भवेत् स्वयम् । शक्तिर्वा विष्णु-देवो वा शिवो वा सूर्य एव वा । बीजादुत्पाद्यते देवि !

परं-ब्रह्म निरञ्जनम् । बीज-ध्यानं विना देवि ! कथ-
मुत्पद्यते हरिः । सदा-शिवो महा-देवः कथमुत्पद्यते
स्वयम् । सदाशिवस्य जननी बीज-रूपा सनातनी ।
इति यो वेत्ति स ज्ञानी स एव वीर-सत्तमः । गुरुर्योग्यः
स एव स्यात् स एव परमः शिवः ॥

सर्वेषां चैव बीजानामेवं ध्यानं समाचरेत् । शुक्ल-
विद्युत्-समाकारां नयन-त्रय-धारिणीम् । कटाक्ष-विशि-
खैर्युक्तां चतुर्बाहु-समन्विताम् । त्रिभङ्ग-ललिताकारां
चारु-चूडा-विराजिताम् । पुण्डरीकोपविष्टाञ्च राका-
चन्द्र-मुखीं पराम् । नाना-गन्ध-प्रलिप्ताङ्गीं सुगन्धि-
माल्य-संस्कृताम् । नानाभरण-लिप्ताङ्गीं मेघांशुक-
परिष्कृताम् । वीणा-वाद्य-विनोदेन उल्लसन्तीं जगत्-
त्रयम् । आद्यां ब्रह्म-मयीं देवीमष्ट-बीज-स्वरूपिणीम् ।
ब्रह्माद्या देवता यस्याश्चरणे पतिता भुवि । भजेऽहं
मातृका-देवीं वेद-मातां सनातनीम् ॥

अनेन विधिना ध्यात्वा सर्वासां भवति प्रियः ।
बीजमेतन्महेशानि ! प्रथमं दशधा जपेत् । तन्मन्त्रं
चञ्चलापाङ्गि ! आनन्द-कूटने स्थितम् । ततो ध्यात्वा
पुनर्जप्त्वा दशधा वर-वर्णिनि ! एतत् तत्वमविज्ञाय
प्रजपेद् यदि पार्वति ! सर्व-पाप-मयः सोऽपि भवेत् शूकर-
वद्-द्विजः । तत्त्वमेतन्महा-गुह्यं योग-मार्गे स्थितं सदा ।

तव भक्त्या मयाख्यातं अति-गुह्यं सुलोचने ! तन्त्राणां
सारमेतत्तु सर्व-सिद्धि-प्रदायकम् । स योगी योग-वेत्ता
च योगात्मा योग-नायकः । योगाचार्यो योग-माया
योगानन्द-प्रदायकः ॥

॥इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे द्वादशः पटलः॥

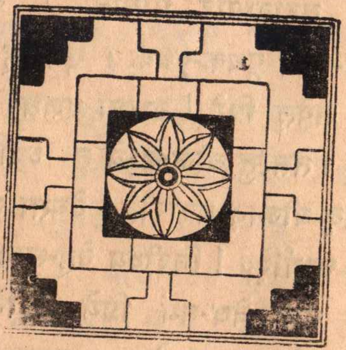

त्रयोदश पटल

श्रीमहा-देव उवाच—अधुना सम्प्रवक्ष्यामि आनन्द-पटलं प्रिये ! शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि सुन्दरं सुमनोहरम् । हृत्पद्मे द्वादश-दले विद्युत्-कोटि-समन्विते । भावयेन्मन्त्र-बीजानि यस्य या इष्ट-देवता । भावयेत् प्रथमं बीजं वराटोपरि पार्वति ! अन्यानि सर्व-बीजानि पत्र-मध्ये पृथक्-पृथक् । एवं हि दशधा जप्त्वा क्रमाद् बीजं जपेत् प्रिये ! दशधा दशधा देवि प्रजपेद् बीजमुत्तमम् । ततस्तु बीज-मध्ये तु ध्यायेदिष्टं सुलोचने ! तस्माद् बीजाद् वरारोहे ! देवता जायते ध्रुवम् । तस्य देवस्य चार्वङ्गि ! निरीक्ष्य देह-सुन्दरम् । चरणात् केश-पर्यन्तं नाना-वेष-मयं प्रिये ! निरीक्ष्य मनसा भक्त्या पुनर्ध्यानं समाचरेत् । ततस्तु प्रजपेद् बीजं वर्णानन्द-स्वरूपिणम् । प्रजपेत् प्रथमं बीजं बीज-ध्यानं ततः परम् । एतत्तु प्रथमं बीज-साधनं दुर्लभं प्रिये !

सर्वेषां बीज-वर्णानां यदि जानाति साधकः । ध्यानं परम-कल्याणं वर्णे वर्णे पृथक् पृथक् । अज्ञात्वा चञ्चलापाङ्गि ! मातृका-ध्यानमाचरेत् । तदेवं सहसा देवि ! सर्वासां जायते ध्रुवम् । यस्य मन्त्रस्य यद्वर्णं तस्य ध्यानं पृथक् पृथक् । बीजात्तु जायते विष्णुरवतार-वरः प्रिये ! बीजात्तु जायते रामो बीजात् कृष्णः प्रजायते । स्थावरं जङ्गमं देवि सर्वं बीजात् प्रजायते । आज्ञा-चक्रे विशुद्धौ च मूलाधारे ततः प्रिये ! स्वाधिष्ठाने ततो देवि ! मणिपूरे च पार्वति ! अनेन विधिना देवि ! कुर्यात् साधक-सत्तमः । प्रत्यहं कुरुते यस्तु स सिद्धः शिव एव सः । प्रत्यहं चञ्चलापाङ्गि ! षट्-चक्र भ्रामयेत्तु यः । साधनाच्च महेशानि ! तस्मात् कुसुम-वत् प्रिये ! नित्यं च हृदये कुर्यादवश्यं वद किं प्रिये ! बीजस्य चञ्चलापाङ्गि ! ध्यानं मन्त्रं पृथक्-पृथक् ।

साक्षात् श्रीः प्रकृतिर्देवी बीज-रूपा सनातनी । सनातनस्य जननी सर्व-वर्ण-मयी प्रिये ! जपस्य प्रथमे काले बीजस्य तत्वमुच्चरेत् । ततस्तु प्रजपेन्मन्त्रं स-सेतुं वर-वर्णिनि ! बीज-तत्वमविज्ञाय प्रजपेद् यदि कोटिधा । सर्वं तस्य वृथा देवि ! अरण्ये रोदनं यथा । तत्व-त्रयं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां शृणु सुन्दरि ! विभाव्य नाभि-पद्मेषु वायु-बीजं स-बिन्दुकम् । मन्त्रस्य प्रथमं वायु-बीजं मध्ये विचिन्त्य वै । ध्यात्वा बीजं महेशानि ! प्रजपेद् बीजमुत्तमम् । दशधा प्रजपेद् बीजं दशधा ध्यानमेव च । दश-तत्व-युतं मन्त्रं तदैव सहसा भवेत् । संशोध्य बीजं चार्वङ्गि ! वह्नि-बीजे विचिन्त्य वै । हृत्पद्मे वह्नि-मध्ये तु ध्यात्वा बीजं हुताशनम् ।

दशधा प्रजपेन्मन्त्रं दशधा ध्यानमेव च । विंश-तत्व-युतं मन्त्रं तदैव सहसा भवेत् । मातृ-स्वरात् ततो देवि ! गलितामृत-धारया । आप्लाव्य बीजं चार्वङ्गि ! सर्वावयव-संयुतम् । तदैव सहसा कृत्वा ललाटे वरुणालये । वरुणस्य तु मध्ये तु तद्-बीजं भावयेत् प्रिये ! दशधा जपित्वा वै बीजञ्च दशधा स्मरेत् । तदामृत-मयं बीजं सहसा भवति प्रिये ! विष्णु-मन्त्रेषु देवेशि ! चन्द्र-बीजेषु भावयेत् । अन्यत् सर्वेषु मन्त्रेषु भावयेद् वरारोहे । त्रिंश-तत्व-युतं मन्त्रं तदैव भवति प्रिये ! तत्वातीतं स्वधातीतं वाचा विद्यां जपेत् प्रिये ! अनेन विधि-हीनञ्च तज्जपं विफलं सदा । तत्त्व-हीनं जपेद् यस्तु विफलं सततं प्रिये ! शोषणं दहनं देवि ! अमृतं ज्ञान-संज्ञकम् । एतत्-तत्व-मयं भद्रे ! शीघ्रं सिद्धि-प्रदायकम् । यो जपेत् तत्त्व-रहितं तस्य हानिः पदे पदे । तस्मात् तत्त्वं शुभाराध्य तस्मान्मन्त्रं जपेत् सुधीः ।

अनेन विधिना देवि ! सर्व-तत्व-मयं मनुम् । कृष्ण-मन्त्रेषु रामेषु अवतार-वरेषु च । सौर-गणपतौ देवि ! शक्ति-मन्त्रे स्वयं प्रिये ! शिव-मन्त्रेषु चार्वङ्गि ! अन्य-तन्त्रे तथैव च । त्रिंशत्-तत्व-युतं कृत्वा मन्त्र-बीजं सुलोचने ! एवमेव विधानेन बीजे जीवत्वमाप्नुयात् । तस्मात् बीजाद् वरारोहे ! राम-कृष्णादयश्च ये । उत्पद्यन्ते वरारोहे ! नान्यथा वर-वर्णिनि ! एतन्मन्त्रं सकृत् कृत्वा प्रजपेदनिशं मनुम् । प्रजपेदनिशं विद्यां शौचाशौचं न चाचरेत् ।।

मन्त्रे चाक्षर-बुद्धिः स्याद् गुरौ तु मानवः प्रिये ! देवतायाः वरारोहे ! प्रतिमा-बुद्धिर्जायते । किं तस्य जप-पूजायां सर्वं व्यर्थं कदर्थनम् । इति ते कथितं देवि ! बीज-तत्त्वं सु-गोपनम् । कस्यचिन्नैव वक्तव्यं यदि कल्याणमिच्छति । एतज्ज्ञानमविज्ञाय स कथं गुरुतां व्रजेत् ।।

।।इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे त्रयोदशः पटलः।।

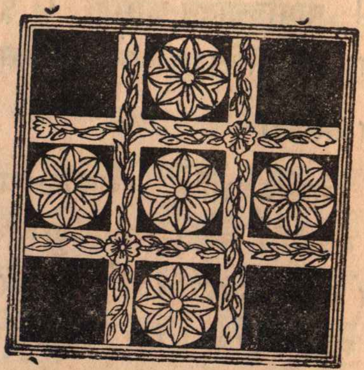

चतुर्दश पटल

श्रीमहा-देव्युवाच—देव-देव महा-देव संसारार्णव-तारक ! कृपया कथयेशान ! वकार-तत्त्वमुत्तमम् ॥

श्रीमहा-देव उवाच—पूर्वोक्तं चञ्चलापाङ्गि ! गायत्री-तत्त्वमुत्तमं । गायत्री या वरारोहे ! चतुर्वकार-संयुता । कान्तं शेष-वकारं च वरुणं हृदि भावय । यवर्गं वायु-बीजं च हृदि भावय पार्वति ! यकारं यत्तु देवेशि ! वायु-बीजं तदुच्यते । यकारस्य चतुर्थो यो वारुणं बीज-कीर्तितम् । यकारञ्च वायु-बीजं मयैतन्निश्चितं प्रिये ! सर्व-विद्यासु मन्त्रेषु वरुणं भावय प्रिये ! वह्नि-जाया-युतानां च यवर्गं हृदि भावय । गायत्री-संहिता देवि ! पापोच्चाटन-कर्मणि । पूर्वोक्त-ध्यान-मार्गेण भावना परिकीर्त्तिता । ध्यान-भेदेन चार्वङ्गि ! वकारं भावय प्रिये ॥

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि ककार-ध्यानमुत्तमम् । विशेषं शृणु वक्ष्यामि ककारस्याति-दुर्लभम् । यन्नोक्त-मानन्द-पटले अधुना कथयामि ते । तद्-ध्यात्वा साधको याति दुर्लभं मोक्षमव्ययम् । येन ध्यान-प्रकाशेन मन्त्रं तन्त्रञ्च सिध्यति । एवं तद्-ध्यान-मात्रेण शिव-तुल्यो भवेन्नरः । ककार-ध्यान-मात्रेण सर्व-वर्णं हि सिध्यति । ककार-भावनाच्चैव सर्वासां भावना भवेत् । तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन ककारं हृदि भावय ॥

ॐ प्रातरादित्य-सङ्काशां सिंह-पीठोपरि-स्थिताम् । रक्त-पद्मोपविष्टां च रक्त-वस्त्र-परीधृताम् । चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च पञ्च-बाण-धनुंर्धराम् । वरदाभय-दात्रीञ्च पीन-तुङ्ग-पयोधराम् । मृणाल-सदृशाकार-चतुर्बाहु-परीवृताम् । शङ्ख-कङ्कण-केयूरैरङ्गदैः परिशोभिताम् । सुगन्धि-मल्लिका-हारैः कबरी-मध्य-शोभिताम् । त्रिभङ्ग-ललिताकारां चारु-चूडा-विराजिताम् । शिखि-पुच्छ-युतां चूडां नाना-रत्न-समन्विताम् । ईषद्धास्य-प्रसन्नास्यां मुक्त-रञ्जित-नासिकाम् । माणिक्य-किरणो-द्योत-दन्त-पंक्ति-विराजिताम् । पूर्ण-चन्द्र-समाभास-नख-पंक्तिमनुत्तमाम् । स्वर्ण-सूत्र-युतं हार-रत्न-चारु-विनिर्मिताम् । कटाक्ष-विशिखोद्दीप्त-भ्रू-लता-परि-शोभितां । तीर्थ-त्रय-युतां रम्यां नयन-त्रय-राजिताम् । राम-रम्भा-समाकार-ऊरु-द्वय-विराजिताम् । वहल्लतासु संयुक्त-रत्न-किञ्जल्क-शोभिताम् । अष्ट-वर्गैः सेविताञ्च अष्ट-वर्गैः प्रपूजिताम् । सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जना-ञ्चित-लोचनाम् । ललाट-पट्टिका-शुभ्रामर्द्ध-चन्द्र-परि-वृताम् । ब्रह्मादि-देवता-वृन्दैः शिरसि धार्यते च या । किमाख्यां कामिनीं साक्षात् ककार-वर-रूपिणीम् ॥

एवं ध्यात्वा वरारोहे ! जपेद् यदि साधकः । तदैव सहसा सिद्धिर्जायते तस्य सुन्दरि ! वर्ण-ज्ञानं विना देवि ! न जपेत् पाशवः क्वचित् । किं तस्य ध्यान-पूजायां पुरश्चर्या-शतं शतम् । किं तस्य जप-होमेन चन्द्र-सूर्यस्य पर्वणि । वर्ण-ज्ञानं विना देवि ! वैष्णवः शैव एव वा । एक-दानोच्चरेद् देवि ! अज्ञात्वा वर्ण-दीपिनीम् । सर्वासां मन्त्र-विद्यानां दीपनी या प्रकीर्त्तिता । सर्वेषां शास्त्र-मध्ये तु प्रशस्ता वर्ण-दीपिनी । शक्ति-मन्त्रे तथा सौरे गणेशमर्च्यते सदा । ज्ञात्वा तन्त्रं प्रकुर्वीत दीक्षां पूजां शुचि-स्मिते ॥

श्रीमहा-देव उवाच—रहस्यं तत्र वक्ष्यामि अत्यन्त-गोपनं शृणु । यत्कृत्वा साधको याति परमं पद-मुत्तमम् । ललाटे तिलकं कृत्वा चन्दनेन सुगन्धिना । कर्पूरागुरु-कस्तूरी-रोचना-कुंकुमैः प्रिये ! तिलकं धारयेत् यत्नादेकीकृत्य मनोहरम् । त्रिकोणं सुन्दरं स्वच्छं तिलकं जन-मोहनम् । एकीकृत्य पृथक् वापि नाना-वस्तुषु कारयेत् । राज्यार्थी रक्त-वर्णेन मोक्षार्थी श्वेत-चन्दनैः । वश्ये रोचनया देवि ! तिलकं कारयेत् सुधीः । मोहने चञ्चलापाङ्गि ! अगुरु-कुंकुमादिना । कृष्ण-गन्धं वरारोहे ! शत्रोर्मारण-कर्मणि । ललाटे बाहु-मूले च तथा स्कन्ध-द्वयेषु च । हृत्पद्म-पार्श्व-युगले

पृष्ठे नाभौ च सुन्दरि ! ऊरु-द्वये गण्ड-युग्मे अधः पाद-द्वयेषु च । विलिखेद् यत्नतो देवि ! ककार-वर्ण-मुत्तमम् । तत्र विन्दु-युतं कृत्वा विलिखेद् वर-वर्णिनि ! तदैव सहसा देवि ! विद्या-मन्त्रञ्च सिद्धयति । मोहये-दखिलान् लोकान् वशयेदिष्ट-देवताम् । इष्ट-देवं वशं कृत्वा एकदा प्रजपेद् यदि । तत्क्षणात् चञ्चलापाङ्गि ! देवत्वमुपजायते । देवत्वं हि विना देवि ! कुतः पूजा कुतो जपः । अन्यथा प्रेत-वत् पूजा वैष्णवे च विशेषतः । अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा पूजयेदिष्ट-देवताम् । पूजाधि-कारि चार्वङ्गि ! देवत्वमुपजायते । ललाटे तिलकं कृत्वा रोचनासु शुचि-स्मिते ! तन्मध्ये विलिखेद् वर्णं ककारं सुमनोहरम् । सामान्यमेतद् कथितं तिलकं जन-मोहनम् । एतत्तु तिलकञ्चैव वशयेदपि केशवम् । जपासनं दशम्यां तु तदारभ्य च प्रत्यहम् । एतद्-वर्णम-विज्ञाय विषये समुपास्महे । स भ्रष्टः स च पापिष्ठः रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

॥ इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे चतुर्दशः पटलः ॥

पञ्चदश पटल

श्रीदेव्युवाच—देव-देव महा-देव नील-कण्ठ त्रि-लोचन ! हृत्तत्त्वं कथयेशान ! यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीमहा-देव उवाच—शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि ज्ञानं परम-दुर्लभं । येन विज्ञान-मात्रेण विष्णुः स्याद् वैष्णवः प्रिये ! हृत्पद्मे द्वादश-दले स्व-विद्यां भावयेत् सुधीः । ककारं भावयेदादौ वराटोपरि पार्वति ! पत्रे पत्रे ततो देवि ! स्व-विद्यां प्रजपेत् सुधीः । मन्त्राणां प्रथमं बीजं ध्यात्वादौ प्रजपेत् सुधीः । तस्मान्मन्त्रात् ततो देवि ! जायते देव-विग्रहम् । देवतां च ततो ध्यात्वा तन्त्रोक्त-ध्यान-वर्त्मना । ध्यानं च त्रिविधं देवि ! समान-फल-दायकम् । कृत्वा ध्यान-त्रयं देवि ! हृत्पद्मे परमेश्वरि ! सहस्र-दल-पद्मातर्मध्य-स्थाने गुरोर्मुखात् । स्व-विद्यां भावयेद्देवि ! कोटि-विद्युतसमाकृतिं । भावयेदनिशं भक्त्या सिद्धो भवति तत्क्षणात् । बीजात्तु जायन्ते देवि ! राम-कृष्णादयश्च ये । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्र-सूर्यादयश्च ये । ते सर्वे चञ्चलापाङ्गि ! बीजात्तु प्रभवन्ति वै । ज्ञात्वा सनातनं तत्त्वं आनन्द-पटले स्थितम् । पूजा कार्या च चार्वङ्गि ! सर्व-सिद्धि-मयो भवेत् । इदं सनातनं तत्त्वमज्ञात्वा नरकं व्रजेत् ॥

शूद्रः शूद्र-मुखाच्छ्रुत्वा विद्यां वा मन्त्रमुत्तमम् । रौरवं नरकं यं यं तं तमाप्नोति निश्चितम् । न शूद्राय मतिं दद्यान्न च शूद्रः कदाचन । उभयोर्नरकं देवि ! कोटि-कुल-समाकुलम् । अनाचारो द्विजो यस्तु शूद्राणां गुरुरेव सः ।

यदि शूद्रो भवेद्देवि ! सत्यवादी जितेन्द्रियः । स धर्मे निरतो भूत्वा श्रुत्वा द्विज-गुरोर्मुखात् । सर्व-सिद्धिमवाप्नोति शीघ्रं देवमवाप्नुयात् ।

यद्देशे विद्यते शूद्रः पातकी मन्त्र-विक्रयी । तद्देशं पतितं मन्ये तस्य राजा च पातकी । स कथं चञ्चला-पाङ्गि ! जिह्वायां प्रजपेन्मनुम् । तस्य जिह्वा वरा-रोहे ! मूत्र-शोणित-विड् यथा । तन्मुखं मूत्र-विट्-कूप-मन्नं विष्ठा समं सदा । तज्जलं शोणितं साक्षा-च्चाण्डाल-सम-जातिषु । पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्व-देव-मयानि वै । आलोक्य तन्मुखं तीर्थः तत्स्थानं त्यज्य गच्छति । तीर्थ-कोटि पलायन्ते दृष्ट्वा तन्मुख-मण्डलम् । गङ्गा-जलं परित्यज्य द्रुतं स्व-स्थानमाप्नु-यात् । महा-पातकिनो ये च ब्रह्म-हत्यादि-संयुताः । त्रैलोक्य-पावनी गंगा तान् पुनाति न संशयः । मन्त्र-विक्रयिणः शूद्राः सदा नरक-गामिनः । कलौ तु भारते वर्षे भविष्यन्ति न संशयः । मन्त्र-विक्रयिणः शूद्राः

जायन्ते व्याघ्र-योनिषु । तत्संसर्गश्च यो विप्रश्चर्मकार-स एव हि । चाण्डाल-सदृशः सोऽपि स एव वर्ण-सङ्करः । स्व-धर्म-निरतः शूद्रो विद्या-मन्त्रं शृणोति यः । स धन्यः पृथिवी-मध्ये स एव वैष्णवोत्तमः । स शाक्तः शिव-भक्तश्च गाणेशः सौर एव च । एतत्ते कथितं देवि ! वर्ण-ज्ञान-विनिर्णयम् ॥

॥ इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-संवादे पञ्चदशः पटलः ॥

षोडश पटल

श्रीमहादेव उवाच—अपरैकं प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । यत् कृत्वा चञ्चलापाङ्गि ! रावणाद्या निशाचराः । अवाप्यमति-वृद्धिं च त्रैलोक्याधिपतिः प्रभुः । सांकेतं परमं गुह्यमक्षराणां पृथक् पृथक् । एतत्-तत्वं विजानाति हरिर्ब्रह्मा पुरन्दरः । पञ्चाशद्-वर्ण-संकेतं सावधानावधारय । अकृत्वा साधको याति रौरवं नरकं व्रजेत् । रौरवं नरकं याति पुनरावृत्ति-दुर्लभं । विशेषं विष्णु-मन्त्रेषु कुर्याद् वैष्णव-सत्तमः । अकृत्वा वैष्णवो याति नरकं कोटि-कोटिशः ॥

मासि मासि वरारोहे ! शनि-भौम-दिने प्रिये ! प्रातः-स्नानं समासाद्य कृत्वा सन्ध्यां समाप्य च । सूर्यायार्घ्यं ततो दद्यात् पाद-प्रक्षालनाय च । याग-मण्डपमासाद्य भूत-शुद्धिं विधाय च । कुर्यान्न्यासं मातृकायाः प्राणायामं ततः परम् । न्यासानन्यांस्ततः कुर्यात् तन्त्र-मार्गेण पार्वति ! शुक्लाम्बर-धरः स्रग्वी गन्ध-लिप्त-कलेवरः । रक्तासनं समासाद्य कुशासन-मथापि वा । प्रलिप्य ताम्र-पात्रेषु सिन्दूरं रक्त-चन्दनं । विलिख्य मातृका-वर्णं ह्यस्मिन् पात्रे पृथक् पृथक् । अकारादि-क्षकारान्तं सविन्दुं चन्द्र-संयुतम् । महा-पद्मा-

न्तर-स्थानादानीय ब्रह्म-वक्त्रकम् । वाम-नासा-पथेनैव श्वासं पुष्पाञ्जलौ क्षिपेत् । तत्पुष्पं चञ्चलापाङ्गि ! कुर्यात् पुष्पस्य सञ्चयम् । पञ्चाशद्-ध्यानमाचर्य क्षणा-दानीय मातृकाम् । जीव-न्यासं ततः कुर्यात् पूर्व-मन्त्रे पृथक् पृथक् । ध्यात्वा तु पूजयेद् देवीं क्रमेणैव पृथक् पृथक् । गन्धैर्नाना-विधैर्देवीं पुष्पैर्नाना-विधैस्तथा । धूपैर्नाना-विधैर्देवि ! दीपैर्नाना-विधैस्तथा । नैवेद्यं विविधं देवि ! चतुर्विध-मयं तथा । दत्वा नाना-फलादींश्च पूजयेत् परमेश्वरीम् । नाना-पुष्प-मयैर्हारैः शुक्रादि-गन्ध-संयुतम् । महा-पद्म-वनान्तस्थमष्टोत्तर-शतं जपेत् । प्रजपेत् मातृका-वर्णं वर्णे वर्णे पृथक् पृथक् । प्रति-पद्मे जपेन्मन्त्रं यस्मिन् पद्मे तु यत् स्थितम् । तस्मिन् पद्मे वनान्तस्थः स्व-विद्यां प्रजपेच्छ-तम् । सुप्रसन्ना मातृका स्यात् तदैव सहसा प्रिये !

अकृत्वा मातृका-पूजां मासि मासि वरानने ! इष्ट-विद्यां जपेद्यस्तु तस्य हानिं शृणु प्रिये ! चित्रा-नाड़ी-गता भूत्वा मातृका जगदीश्वरी । सर्वेषां वैष्णवानां च शाक्तानां वर-वर्णिनि ! शैवानां च महेशानि ! अन्येषां चैव सुन्दरि ! हरन्ति सर्व-तेजांसि मातृका-चक्र-देवताः । आयुर्वित्तं यशस्तेजो मज्जा-शुक्राणि धातवः । हरन्ति वैष्णवादीनां नान्यथा वचनं मम ।

प्रशस्ता मातृका-पूजा दीक्षायामत एव हि । पुरश्चर्यां हि चार्वङ्गि ! पूजनीया पृथक् पृथक् । माता सा सर्वं-विद्यानां मन्त्राणां च पृथक् पृथक् । यस्मादुत्पद्यते विद्या मन्त्रं च सुर-वन्दिते ! तस्मात्तु यत्नतो देवि ! तासां पूजा विधीयते । नान्यथा निष्फला पूजा सम्वत्सर-कृता च या । अनेन विधिना देवि ! पूजयेद् यदि मातृकाम् । प्रसन्ना मातृका देवि ! पुत्रत्वेनानु-कल्प्यते । रहितो मातृका-पूजा जप-पूजन-तत्परः । तस्य सर्वं महामाया मातृका जगदीश्वरी । हरन्ति मन्त्र-तेजांसि आयुर्विद्या यशो बलम् ।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । अनुलोम-विलोमेन कथितं शृणु पार्वति ! अनुलोम-विलोमं च तथैव हि महेश्वरि ! सर्वेषां जप-यज्ञानां सहसा फल-भाग् भवेत् । सहसा सिद्धिमाप्नोति धर्ममाप्नुयात् । सहसा अर्थमाप्नोति सहसा मोक्षमाप्नुयात् । पौर्णमा-स्याममावास्यां मासि मासि प्रयत्नतः । यः करोति प्रसन्नात्मा स एव श्रीसदाशिवः । ज्ञात्वा सन्दीपनीं विद्यां आनन्द-पटले स्थितं । अज्ञात्वा दीपनी-विद्यां चतुर्वर्ग-फल-प्रदाम् । रहस्यमेतदन्यच्च सर्वं च विफलं व्रजेत् ॥

॥इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे षोडशः पटलः॥

सप्तदश पटल

श्रीमहादेव उवाच—एतत्-तत्वमविज्ञाय न भावो जायते प्रिये ! न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे च पार्वति ! भावेषु विद्यते देवि ! भावो मोक्ष-स्वरूप-धृक् । दिव्य-भावो वीर-भावः सदैव सहसा भवेत् । अन्यथा चञ्चलापाङ्गि ! पशु-भाव-मयः सदा । स्वभावेन विना देवि ! कथं सिद्धिर्भवेत् प्रिये ! तस्मात् प्रयत्नतो देवि ! वीर-भाव-मयो भवेत् । अनेनैव विधानेन मातृकां पूजयेत्तु यः । स एव दिव्य-भावः स्याद् वीर-भावः स एव हि । स धनी स गुणी लोके मातृकां यस्तु पूजयेत् ।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि सामान्यं वर-वर्णिनि ! पूर्वोक्त-ध्यानमाचर्य प्रजपेन्मातृका-मनुं । ककार-ध्यान-मात्रेण सर्व-सिद्धिः प्रजायते । जप्त्वा ककारं चार्वङ्गि ! सर्वासां भवति प्रियः । सर्वासां मातृकां जप्त्वा ककारं केवलं च वा । ककारं सर्व-वर्णानां मूल-प्रकृति-रूपिणीं । तस्मात् प्रयत्नतो देवि ! ककारं पूजयेत् प्रिये ! प्रत्यहं पूजयेद् देवीं प्रथमं पूजयेत् सुधीः । सर्वासां फल-माप्नोति तदा भाव-मयो भवेत् । ककार-पूजनाद् भद्रे ! सर्वासां पूजनं भवेत् । प्रत्यहं कुरुते यस्तु प्रति-मासि वरानने ! दिव्य-वीरः स एव स्यात् सर्व-पूजा-फलं लभेत् । अकृत्वा चञ्चलापाङ्गि ! मनसापि च संस्मरेत् । सर्व-पूजा-मयः सोऽपि सर्व-भाव-मयः सदा ।

भाव-तत्त्वमविज्ञाय विष्णु-मन्त्रं कथं जपेत् । शक्ति-मन्त्रं महेशानि ! स कथं पामरो जपेत् । शिव-मन्त्रं च सौरं च गाणेशं स कथं जपेत् । भाव-तत्त्वं विना देवि ! प्रजपेद् यदि कोटिधा । सर्वं तस्य वृथा देवि ! नरकं च पदे पदे । स कथं चञ्चलापाङ्गि ! दिव्य-वीर-गुरुर्भवेत् । पशु-वत् सर्वदा देवि ! स एव पशु-गुरुः प्रिये ! भाव-तत्त्वेन रहितः स कथं पञ्चमं यजेत् । वैष्णवस्तु वरारोहे ! मकारं पञ्चमं यजेत् । विष्णु-भाव-मयो भूत्वा मकार-पञ्चकं यजेत् । मकारस्य च या पूजा अन्यथा विफला भवेत् । ध्यान-मात्रेण चार्वङ्गि ! ककारस्याति-दुर्लभा । देवताया वरारोहे ! शरीरं जायते ध्रुवं । एवं मन्त्रं प्रवक्ष्यामि आनन्द-पटले स्थितम् । कालीं छिन्नादि-विद्यां च त्रिंशद्-वर्ण-मयीं सदा । तदा सिद्धि-मयं सोऽपि अन्यथा विफलं सदा । इष्ट-ध्यानं ततः कृत्वा हृदि मध्ये निरीक्षणं । प्रथमं कामिनीं ध्यात्वा प्रफुल्लां तदनन्तरं । प्रफुल्ला-ध्यान-मात्रेण जायते देव-विग्रहम् । प्रफुल्ला जायते देवि ! यस्य या इष्ट-देवता । यदिष्टं भायेद् देवि ! मन्त्रोक्त-ध्यान-वर्त्मना । देवतायाः शरीरं च वीजादुत्पद्यते

ध्रुवं । मन्त्रस्य प्रथमाद् बीजाज्जायते नग-नन्दिनि ! पञ्चाशन्मातृका या सा सर्वा युवति-रूपिणी । तस्मात्तु युवती-देहाज्जायते कृष्ण-विग्रहं । रामः पद्म-पलाशाक्षः प्रफुल्लो जायते ध्रुवं । वीजादुत्पद्यते देवि ! परं-ब्रह्म सनातनः । वीज-संयोग-मात्रेण शब्द-ब्रह्म सनातनम् । अपरैकं प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पञ्चाशद्-वर्ण-संकेतं पञ्चाशत्-तत्वमद्भुतं । वर्ण-तत्वं विना देवि ! प्रजपेद् यदि कोटिधा । सर्वं तस्य वृथा देवि ! हानिस्तस्य पदे पदे । हृत्पद्मे द्वादश-दले वराटोपरि कामिनीं । ध्यात्वा प्रयत्नतो देवि! तद्-गर्भे वर्ण-भावनं । अकारादि-क्षकारान्तं त्रिकोण-मध्य-मण्डले । अनुलोम-विलोमेन कामिन्या गर्भ-पञ्जरे । एकैकं भावयेद् देवि ! प्रति-वर्गे पृथक् पृथक् । सर्वासां देव-देवीनां ककारं सुर-पूजिते ! ध्यात्वा प्रयत्नतो देवि अनुलोम-विलोमतः । पञ्चाशत्-तत्व-संकेतं पञ्चाशद्-वर्णमेव हि । यः करोति नरो ज्ञात्वा शीघ्रं विद्या प्रसीदति । किमसाध्यं वरारोहे ! यस्मै विद्या प्रसीदति । षट्-चक्रे परमेशानि ! रहस्यं स्थानमुत्तमं । सहस्रारे गुरोः पादे पद्मं ध्यात्वा प्रयत्नतः । पञ्चाशद्-वर्ण-संकेतं यः कुर्यान्मानवः प्रिये ! केशवं वशयेद् देवि ! रहस्येनाधुना ध्रुवं । मोहयेच्चञ्च-लापाङ्गि ! रुद्रं कालानल-प्रभं । सर्वं चराचरं विश्वं

सहसा मोहमानयेत् । एतत्ते कथितं देवि वर्ण-मोहन-मुत्तमं ।

अज्ञात्वा मोहनं तत्त्वं प्रजपेद् यदि पार्वति ! तस्मै लोका गन्धर्वाश्च वैर-भावं व्रजन्ति वै । प्रत्यक्षर-मयं देवि ! कथितं वर्ण-मोहनं । अज्ञात्वा मोहनं तत्त्वं यः कुर्यादन्य-मोहनं । सर्वं तस्य वृथा देवि ! नान्यथा तु कदाचन । एतत्-प्रभावात् तु काल-कूटं पिबाम्यहम् । एतत्-तत्व-प्रभावाद्धि अचिरात् सिद्धिमाप्नुयात् । गर्भ-मध्ये जपेन्मन्त्रं अनुलोम-विलोमतः । जपित्वा वर्णमेकं च स्व-स्थानमानयेच्च तं । पुनर्वर्णं समाकृष्य कामिनी-गर्भ-मध्यतः । प्रजपेदक्षरं देवि ! चन्द्र-विन्दु-समन्वितं । पञ्चाशदक्षरं चैव भावयेच्च पृथक् पृथक् । अनेन विधिना देवि ! यो जपेन्मन्त्रमुत्तमं । तस्य शीघ्रं भवेत् सिद्धिरन्यथा विफला भवेत् । सम्भावं लिखितं देवि ! यथा भवति अक्षरं । तत्तदेव वरारोहे ! जप-पूजा निरर्थकं । विशेष-मन्त्रं वक्ष्यामि आनन्द-पटले स्थितं । मन्त्रं श्रीमोहनं नाम पञ्चाशद्-वर्ण-संज्ञकं । ज्ञात्वा यः कुरुते देवि ! तस्य सिद्धिरदूरतः । अन्यथा विफलं सर्वं रहस्यं सफलं न हि ॥

॥इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे सप्तदशः पटलः॥

अष्टादश पटल

श्रीमहादेव उवाच—अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतं । अज्ञात्वा वैष्णवो याति रौरवं वर-वर्णिनि ! एवं तत्त्व-युतं देवि ! यो जपेत् परमेश्वरीं । नव-तत्त्व-मयीं विद्यां यदा जपति पार्वति ! तदैव सहसा सिद्धिर्जायते सुर-सुन्दरि ! नव-तत्त्व-युतं मन्त्रं ज्ञात्वा यः प्रजपेत् सकृत् । तदैव सहसा देवि ! विष्णु-तुल्यो भवेद् ध्रुवम् । प्रथमं कामिनीं ध्यात्वा हृत्पद्मे कमलेक्षणे ! उच्चरेत् प्रथमं वीजं कामिनीं तदनन्तरं । पुनर्वीजं द्वितीयं च उच्चरेद् यत्नतः सुधीः । कामिनीं च ततो ध्यात्वा तृतीयं वीजमुच्चरेत् । अनेन विधिना देवि ! कामिनी-ध्यान-सम्पुटं । पुनर्ध्यानं ककारस्य अनुलोमेन पार्वति ! अनुलोमं यथा देवि ! विलोमं च तथा कुरु । एवं क्रमेण देवेशि ! यद् यदक्षरकं प्रिये ! कृत्वा यत्नाद् वरारोहे ! सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् । सर्वासां मन्त्र-वर्णानां ध्यात्वा ध्यात्वा पृथक् पृथक् । आद्यन्ते कामिनीं ध्यात्वा शिव-शक्ति-मयो भवेत् ।

अथवा चञ्चलापाङ्गि ! हृत्पद्मे कमलानने ! आदौ मध्ये तथा चान्ते वीजं दत्वा जपेत् प्रिये ! तदैव सहसा देवि ! जायते देव-विग्रहं । सदा निद्रातुरो मन्त्रः कलि-

काले च भारते । रहस्यानेन चार्वङ्गि ! निद्रा-भङ्गो तदा भवेत् । जपेदादौ वरारोहे ! त्रि-वारमनुलोमतः । विलोमेन त्रि-वारं च ध्यात्वा जप्त्वा हृदम्बुजे ।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि निद्रा-भङ्गस्य लक्षणं । प्रथमं कामिनीं ध्यात्वा अन्ते च तदनन्तरं । दशधा प्रजपेन्मन्त्रं निद्रा-भङ्गाय पार्वति ! ततस्तु प्रजपेद् देवि ! प्रफुल्लं विश्व-मोहनं । रहस्यानेन चार्वङ्गि ! जायते विष्णु-विग्रहं । शङ्ख-चक्र-धरं देवं शुद्ध-तत्त्वात्मकं प्रिये ! पीताम्बर-धरं शान्तं प्रसन्नं मुख-पङ्कजम् । आजानु-लम्बित-करं वन-माला-विराजितं । त्रिभङ्ग-ललिताकारं चारु-चूड़ा-विभूषितं । श्रीवत्स-कौस्तु-भोद्दीप्तं जायते विष्णु-विग्रहं । अवतारं स्वयं कृष्णं ललिताञ्जन-चिक्कणं । गोपी-मण्डल-मध्यस्थं नाना-सुख-मयं हरिं । अथवा जायते देवि ! तस्माद् वीजाच्छुचि-स्मिते ! कामिनी-ध्यान-मात्रेण देवता जायते ध्रुवं । रहस्यमेतच्चार्वङ्गि ! कर्तव्यं हृदि मध्यतः । रहस्यानां च सर्वेषां सारमेतन्न संशयः ।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतं । ध्यात्वा तु कामिनी-नारीं प्रथमं हृदि मध्यतः । तद्-गर्भे भाव-येन्मन्त्रं मनसा नग-नन्दिनि ! तद्-गर्भे भावयेद् देवं ध्यान-मार्गेण सुन्दरि ! पुनश्च कामिनीं ध्यात्वा तस्मा-दाविर्भवेद्धरिः । हरिरित्युप-लक्षणं देवि ! सर्वेषामेव

निर्मितं । निद्रा-युक्तं महेशानि ! विद्या-मन्त्रं भवेत् सदा । तस्मात्तु निद्रा-रहितं प्रजपेद् यदि एकदा । जपात् कोटि-गुणं भद्रे ! सहसा लभते ध्रुवं । वाम-बाहोर्यदा वाहस्तदा निद्रातुरो मनुः । चलते च यदा बाहोर्दक्षिणे वर-वर्णिनि ! तदैव चञ्चलापाङ्गि ! त्यक्त-निद्रः सदा मनुः । अतएव वरारोहे ! त्यक्त-निद्रं जपेत् सुधीः ।

श्रीदेव्युवाच—पूजा-काले महादेव ! यदि निद्रातुरो भवेत् । तत्कथं सिद्ध्यते मन्त्रः किं कर्तव्यं तदा प्रभो ! प्रजपेत् केन विधिना न जपेद्वा वद प्रभो !

श्रीमहादेव उवाच—रहस्य-मन्त्रं वक्ष्यामि आनन्द-पटले स्थितं । द्वादशार्ण-मयं मन्त्रः निद्रा-भङ्गस्य दीपनं । रहस्य-मन्त्रं चार्वङ्गि ! अज्ञात्वा विफलं भवेत् ।

॥इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे अष्टादश पटलः॥

ऊनविंश पटल

श्रीमहादेव उवाच—सन्देहो नैव कर्तव्यः पूजा-काले शुचिस्मिते ! सहसा कामिनीं ध्यात्वा तुरीय-कूट-मुच्चरेत् । तदैव सहसा देवि ! त्यक्त-निद्रो भवेन्मनुः । प्रजपेद् दशधा देवि ! हृदये मनसापि वा । पूजा-काले महेशानि ! सन्त्यजेद् यदि दक्षिणं । प्रायश्चित्तं भवेत् तस्य मन्त्रस्य वर-वर्णिनि ! प्रायश्चित्तमिदं देवि ! कृत्वा मन्त्रं जपेद् यदि । किं तस्य दक्षिणो बाहुस्तस्य निद्रा-तुरेण किं । रहस्य-मन्त्रं चार्वङ्गि ! पूजा-काले विनिर्णयम् । रहस्यमेतच्चार्वङ्गि ! सर्व-निद्रासु मङ्गलं । वाम-बाहोर्यदा वायुर्यदा च दक्षिणावहः । रहस्यमेतच्चार्वङ्गि ! कृत्वा तु प्रजपेन्मनुम् । तदैव त्यक्त-निद्रा सा विद्या मन्त्रं च नान्यथा ।

योग-निद्रा-मयी विद्या योग-निद्रा-मयो मनुः । विशेष-मन्त्रं वक्ष्यामि आनन्द-पटले स्थितम् । अष्टाक्षरीं महाविद्यां दीपनीं मोक्ष-रूपिणीं । सर्व-सिद्धि-मयो भूत्वा रहस्य-फलमाप्नुयात् । प्रजपेद् यदि निद्रायां किं तस्य जप-पूजने । रहस्यानेन चार्वङ्गि ! निद्रां त्यक्त्वा सनातनी । सुषुम्णा-मध्य-मार्गेषु संस्थिता ब्रह्म-रूपिणी ।

रहस्यमेतच्चार्वङ्गि ! अज्ञात्वा यो जपेन्मनुम् । तस्य पापमहं वक्ष्ये सावधानावधारय । शूद्रेन लिखितं

देवि ! पटलं यस्तु पठयते । यं यं नरकमाप्नोति तं तं प्राप्नोति मानवः । द्वात्रिंशत्कोटि-मध्येषु नरकेषु क्रमेण हि । कोटि-वंशान् समादाय पच्यन्ते मनुजाधमाः । विप्रो वा क्षत्रियो वापि वैश्यो वा नग-नन्दिनि ! पच्यन्ते नरके घोरे शूद्रस्य लिखनात् प्रिये ! तस्मात्तु शूद्र-लिखितं पटलं न जपेत् सुधीः ।

तस्मादावश्यकं देवि! कामिनी-ध्यानमुच्चरेत् । ततः सिद्धो भवेद् देवि ! विद्या-मन्त्रः न चान्यथा । कामिनी-ध्यान-मात्रेण सर्व-सिद्धि-मयो भवेत् । एकेनैव कृतार्थः स्याद् बहुभिः किमुपासते । तव भक्त्या मयाख्यातं यद् गोप्यं भुवन-त्रये । कामधेनुमिदं ज्ञात्वा यदि पूजां समाचरेत् । सफला सा भवेत् पूजा जपं च सफलं सदा । अन्यथा प्रेत-वद् दीक्षा पूजा च प्रेत-वत् सदा । प्रथमं कामिनीं ध्यात्वा जप-पूजां समाचरेत् । काम-धेनोः फलं लब्ध्वा सदाशिव-मयो भवेत् । विष्णु-रूपी स एव स्यान्महा-माया स एव हि । शिव-मन्त्रे विष्णु-मन्त्रे शक्ति-मन्त्रे शुचि-स्मिते ! काम-धेनुमिदं मन्त्रं प्रशस्तं सुर-पूजिते ! एतत् ते कथितं देवि ! सारात्सारं परात्परं । यत्कृत्वा साधको याति दुर्लभं मोक्ष-मन्दिरं । विशेष-मन्त्रं वक्ष्यामि विद्यां श्रीकाम-रूपिणीं ।

अज्ञात्वा कामिनी-ध्यानं सहसा व्यर्थतामियात् । तद्-ध्यानं चञ्चलापाङ्गि ! आनन्द-पटले स्थितं । तस्मादवश्यं जप्तव्यं सततं काम-दीपनीं ॥

॥इति कामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे ऊनविंश पटलः॥

विंशतितम पटल

श्रीदेव्युवाच—मन्त्र-समर्पणं तत्त्वं कथ्यतां देव-पूजित ! कस्मै समर्पयेन्मन्त्रं वद देव पुरातन ! अर्पयेन्मन्त्र-तेजांसि देवेश ! यदि शूल-धृक् ! निस्तेजः साधको देव ! तदैव सहसा भवेत् । किं जप्येन च पूजायां पुरश्चर्येण किं पुनः । तन्मे वद महाभाग ! कृपया परमेश्वर !

श्रीमहादेव उवाच—साधु पृष्टं त्वया भद्रे ! अधुना कथयामि ते । जपित्वा चञ्चलापाङ्गि ! ध्यायेत् परम-कामिनीं । मन्त्र-वर्णं वरारोहे ! कामिनी-गज-गह्वरे । चन्द्र-विन्दु-युतं कृत्वा एकैकं दशधा जपेत् । अनुलोमे यथा देवि ! विलोमेन तथा कुरु । अतः परं वरारोहे ! ध्यात्वा तु कामिनीं परां । वियद्-ब्रह्म महेशानि ! कामिनीं दशधा जपेत् । कामिनी-गर्भ-मध्ये तु वियद्-वह्नि-युतं प्रिये ! प्रजपेद् दशधा भक्त्या वीज-तत्त्वं तदा भवेत् । ततस्तु कामिनी-तत्त्वं ललाटे परिचिन्त्य वै । एवं च मातृका-स्थाने कामिनीं भावयेत् प्रिये ! पञ्चाशन्मातृका-स्थाने प्रजपेन्मातृका-मनुं । वीजस्य ज्योतिःपुञ्जेषु कामिनीं सत्वरं कुरु । दशधा प्रजपेद् देवि ! कामिनी-वीजमुत्तमं । कामिनी-गर्भ-मध्ये तु ज्योतिस्तत्वे जपं कुरु ।

ज्योतिस्तत्वं वरारोहे ! स्वयं जीवः सनातनः । कामिनी-जीव-तत्त्वं च कृत्वा वै साधकः सुधीः । सहस्रारे महापद्मे संस्थाप्य कामिनीं परां । गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री त्वमिति मन्त्रेण मन्त्र-वित् । देवस्य दक्षिणे हस्ते बाह्य-पूजादि चार्पयेत् । देव्या वामे वरारोहे ! समर्प्य फल-भाग् भवेत् । जपस्य सर्व-तेजांसि देव-हस्ते यदि प्रिये ! समर्प्य परमेशानि ! तेजस्वी साधको भवेत् । किं तस्य पूजने भद्रे ! किं जापेन वरानने ! यत्किञ्चिद् दीयते देवि ! सर्वं ब्रह्मणि लीयते । विद्या-मन्त्रं जपेद् देवि ! तत्तेजं उपजायते ।

जीव-तत्त्वं विना देवि ! देव-हस्ते कदाचन । नार्पयेच्चचञ्चलापाङ्गि ! देव्या हस्ते विशेषतः । तस्मात् प्रयत्नतो देवि ! जीव-तत्त्वं कुरु ध्रुवं । जीव-तत्त्वं विना देवि ! यदि देवं न समर्पयेत् । जपं च विफलं देवि ! पूजा च विफला भवेत् । गन्ध-पुष्पादिकं यद्यत् सर्वं देवे समर्पयेत् । जप-तत्त्वं वरारोहे ! सर्व-तेजोमयं तथा । यदि तेजो वरारोहे ! देव्यै देवाय अर्पयेत् । यस्तेजः सततं जीवः कथं सिद्धि : प्रजायते । यस्तेज-स्त्वर्पयेद् देवि ! पुनरागमनं प्रिये ! दुर्लभं चञ्चला-पाङ्गि ! तत्तेजः साधकस्य च । वृथा भयं वरारोहे ! कुरुते नर-पामरः । समर्पणमविज्ञाय प्रजपेद् यदि कोटि

वा । देवता-तेज-मध्ये तु तत्-तेजोपविशेत् प्रिये ! भावयेद् बहु-यत्नेन यथा सर्वस्व-सम्पुटं ।

एतत् ते कथितं देवि ! जीव-तत्त्वं सुदुर्लभं । यत् कृत्वा साधको याति दुर्लभं ब्रह्म-विग्रहं । श्रुत्वा तन्त्रमिदं देवि ! रहस्य-फलमाप्नुयात् । तन्त्रमेतद् वरारोहे ! शृणुयात् साधकः प्रिये !

॥ इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे विंशतितमः पटलः ॥

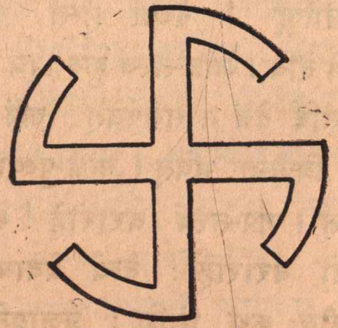

एकविंशतितम पटल

श्रीमहादेव उवाच—चन्द्र-सूर्योपरागे च प्रजपेद् यदि कामिनीं । तदैव सहसा सिद्धिर्जायते नात्र संशयः । प्रथमं कामिनीं जप्त्वा स्व-विद्याः प्रजपेद् यदि । ततस्तु कामिनीं जप्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् । अज्ञात्वा कामिनी-तत्त्वं न जपेद् ग्रहणे प्रिये ! न जपेत् ग्रहणे भद्रे ! अज्ञानाद् यदि मूढ़-धीः । सर्वं तस्य वृथा देवि ! पूर्व-धर्मो विनश्यति । चन्द्र-पर्व सूर्य-पर्व न विचार्यं कदाचन । सूर्य-पर्व वरारोहे ! न पश्येद्यदि पामरः । अस्तु तावत् परो धर्मः पूर्व-धर्मो विनश्यति । न पश्यति यदि अज्ञानात् सर्वारिष्टमवाप्नुयात् । सर्वारिष्टमयः सोऽपि सर्व-पाप-मयः सदा । तस्मादवश्यं कर्तव्यं चन्द्र-पर्व-निरीक्षणं । सूर्य-पर्व तथा देवि ! निरीक्ष्य मोक्षमाप्नुयात् ।

अज्ञात्वा यदि मूढ़ात्मा राश्यादि-गणनं प्रिये ! विचार्य चञ्चलापाङ्गि ! न पश्येद् ग्रहणं यदि । किं पूर्व-पूर्वार्जितं पुण्यं तत्क्षणादेव नश्यति । चन्द्रसूर्योपरागं च तस्माद् यत्नान्निरीक्षयेत् । तस्य कामिनीं भद्रे ! रम्याणि च पुनश्च किं । ग्रासादि-मुक्ति-पर्यन्तं जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् । न

जपेद्यदि चार्वङ्गि ! रौरवं नरकं व्रजेत् । तत्काले चञ्चलापाङ्गि ! परंब्रह्म-स्वरूपिणी । तस्मिन् काले वरारोहे ! क्षत्रादि-जाति-भेदतः । आचण्डाल-प्रभृतयो द्विज-तुल्या भवन्ति हि । द्विजास्तु चञ्चलापाङ्गि ! साक्षाद् ब्रह्म न संशयः । तत्र का गणना देवि ! चाण्डालानां वरानने ! तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं चन्द्र-पर्व-निरीक्षणं ।

चन्द्र-कोटि-गुणं देवि ! सूर्यो दश-गुणं भवेत् । तत्र यद्यत् कृतं कर्म जप-होमादिकं प्रिये ! अक्षयं तद्भवेद् देवि ! वचनं मम निश्चितं । राश्यादि-गणनं त्यक्त्वा यवनैर्दृश्यते यदि । यवनस्य तथा सिद्धिर्जायते पृथिवी-तले । दीक्षितोऽदीक्षितो वापि दृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् । तदेवमक्षयं स्नानं गङ्गा-स्नानं भवेत् प्रिये ! विष्ठा-कूप-स्थितं तोयं गङ्गोदक-समं स्मृतं । प्रशस्तं ग्रहणे काले नान्यथा वचनं मम । षष्ठ-मासाधिको बालो यदि स्याद् वर-वर्णिनि ! ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य तस्य स्नानं प्रशस्यते ।

अकृत्वा स्नान-दानं च सहसा नरकं व्रजेत् । स भ्रष्टः स च पापिष्ठः सहसा शूकरः प्रिये ! तस्यान्नमुदकं देवि ! मूत्रं शोणित-वत् प्रिये ! जायते नात्र सन्देहो मम वाक्यं वरानने ! ब्राह्मणोऽब्राह्मणो वापि

चन्द्र-पर्वणि पार्वति ! चाण्डाल-प्रभृतिः सर्वो ब्रह्म-गोत्रे प्रवर्तते । ब्रह्मेति नाम सर्वेषां राश्यादि-गणनं कुतः । तस्मात्तु चञ्चलापाङ्गि ! सङ्कल्पं नैव कारयेत् । मास-पक्ष-तिथीनां च निमित्तानि च पार्वति ! न विचार्यं वरारोहे ! ग्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः । ग्रासादि-मोक्ष-काले तु कुतो मासः कुतस्तिथिः । स कालः परमं ब्रह्म सर्वेषामक्षि-गोचरं । तत् कथं पामरो लोको राश्यादि-गणनं प्रिये !

उप-रागं परित्यज्य यश्चान्यं परिचिन्तयेत् । स भवेद् रौरवे मग्नो ब्रह्मणश्चानुमानतः । रौरवात् पुनरागत्य पाप-योनौ प्रवर्तते । निष्कृतिर्नास्ति चार्वङ्गि ! तस्यापि च कदाचन । तस्मात् सर्वं परित्यज्य चन्द्र-पर्व-निरीक्षणं । चन्द्र-पर्वे यथा देवि ! सूर्य-पर्वे तथा प्रिये ! तत्र श्राद्धादिकं त्यक्त्वा विद्यां मन्त्रं जपेत् प्रिये ! अन्यथा नरकं याति पितॄन् सप्त नयत्यधः ।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि रहस्यं शृणु सुन्दरि ! अकारादि-क्षकारान्तं प्रति-पद्मे निरीक्षयेत् । ततस्तु प्रजपेत् शून्यं चन्द्र-विन्दुक-संयुतं । ततस्तु हृदयाकाशे शून्ये ज्योतिर्मयेषु च । अनुलोम-विलोमेन मातृकां प्रजपेत् सुधीः । ततस्तु साधक-श्रेष्ठो वराटोपरि मातृकां । पद्म-वीजं यथा देवि ! वर्ण-वीजं प्रभावयेत् । चन्द्र-वीजं पुटं कृत्वा

जपेद् वर्णं प्रसन्न-धीः । अनुलोम-विलोमेन जप्त्वामृत-मयो भवेत् । केवलं कामिनीं ध्यात्वा प्रफुल्ल-वदनान्तरं । वीजादुत्पद्यते देवो देवी वा कमलेक्षणे ! ततस्तु देवतां ध्यात्वा निरीक्ष्य देव-विग्रहं ।

॥ इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे महादेव-महादेवी-सम्वादे एकविंशतितमः पटलः समाप्तः ॥

ग्रन्थ-पातः

"स्यां च वरारोहे ! गङ्गायां स्नानमित्यहम् । करिष्ये इति सङ्कल्प्य शिरः-स्नानं समाचरेत् । अर्को धर्म-मयो देवि ! अमाद्यर्थश्च मूर्तिमान् । श्रवणं च महेशानि ! साक्षात् कामश्च मूर्तिमान् । व्यतीपाते महेशानि ! स्वयं मुक्तिः प्रगीयते । माद्यस्तु चञ्चलापाङ्गि ! स्वयमेवेश्वरः प्रिये !

एतत्तु कथितं देवि ! पञ्च-योगं परात्परम् । कायिकं वाचिकं चैव मानसं पापमुत्कटम् । तत्सर्वं नाशमायाति गङ्गा-दर्शन-मात्रतः । कोटि-जन्मार्जितं पापं जल-स्पर्शाद् विनश्यति । ततस्तु मौशलं स्नानं कोटि-सूर्य-ग्रहैः समं । फलमाप्नोति चार्वङ्गि ! नात्र कार्या विचारणा । आचम्य चञ्चलापाङ्गि ! वासं कुर्याद् विशालधीः ।

॥ इति श्रीकामधेनु-तन्त्रे त्रयोविंशतितमः पटलः ॥

चतुर्विंशति पटल

श्रीदेव्युवाच—माला-रहस्यं योगेन्द्र ! कथयस्व कृपा-निधे !

श्रीमहादेव उवाच—यदि पुच्छं जपेन्मन्त्रं हरेत् तेजांसि तन्मुखम् । मुखाद् यदि जपेन्मन्त्रं पुच्छं च चञ्चलं भवेत् । चञ्चले सति चार्वङ्गि ! तज्जपं निष्फलं भवेत् । पञ्चाशदक्षरं देवि ! ग्रथितं चित्र-नाडिषु । स्थाप्याक्षराणि पूर्वं वै सुमेरुं पुच्छं तर्पणम् । सुमेरुं च परिचार्य अकरादिकमां जपेत् । माला-रहस्यं चार्वङ्गि ! सुगोप्यं भुवन-त्रये ।

जाति-भेदं जीव-भेदं सुगोप्यं च यथा प्रिये ! जीव-मन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय । जीव-मन्त्रं जाति-मन्त्रं समानमिति निर्णयः । यथा ध्यानं महेशानि ! समानं याति जीवने । तद् ध्यानं शृणु चार्वङ्गि ! सावधानावधारय ।

द्विभुजां स्वर्ण-गौराङ्गीं पीत-पट्ट-परिच्छदाम् । नानाभरण-दीप्ताङ्गीं किशोरीं नव-यौवनाम् । कृष्ण-गन्ध-प्रलिप्ताङ्गीं सूर्यासन-कृताश्रयाम् । तनु-दीर्घांगुलीं भास्वन्-नख-चन्द्र-विराजिताम् । कदम्ब-कोरकाकार-स्तन-द्वय-विराजिताम् । कर्पूर-सकलो-

न्मिश्र-ताम्बूल-पूरिताननाम् । कटाक्ष-लक्ष-संयुक्त-भ्रू-लता-परिशोभिताम् । सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तां कुटिलालक-मण्डिताम् ।

सर्वत्रैवं महेशानि ! जीवं तिष्ठति सर्वदा । द्विजा-दीनां च सर्वेषामानन्द-पटले स्थिताम् । एतत्ते कथितं सर्वं कामधेनोर्मतं प्रिये !

।। इति श्रीकामधेनु तन्त्र चतुर्विंशति-तमः पटलः ।।

समाप्तमिदं कामधेनु-तन्त्रम्

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६